ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

मौसलपर्व

प्रथमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका अपशकुन देखना, यादवोंके विनाशका समाचार सुनना, द्वारकामें ऋषियोंके शापवश साम्बके पेटसे मूसलकी उत्पत्ति तथा मदिराके निषेधकी कठोर आज्ञा

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये॥

वैशम्पायन उवाच

षट्त्रिंशे त्वथ सम्प्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः।
ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! महाभारत-युद्धके पश्चात् जब छत्तीसवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ तब कौरवनन्दन राजा युधिष्ठिरको कई तरहके अपशकुन दिखायी देने लगे॥

ववुर्वाताश्च निर्घाता रूक्षाः शर्करवर्षिणः।
अपसव्यानि शकुना मण्डलानि प्रचक्रिरे॥ २॥

बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ बालू और कंकड़ बरसानेवाली प्रचण्ड आँधी चलने लगी। पक्षी दाहिनी ओर मण्डल बनाकर उड़ते दिखायी देने लगे॥ २॥

प्रत्यगूहुर्महानद्यो दिशो नीहारसंवृताः।
उल्काश्चाङ्गारवर्षिण्यः प्रापतन् गगनाद् भुवि॥ ३॥

बड़ी-बड़ी नदियाँ बालूके भीतर छिपकर बहने लगीं। दिशाएँ कुहरेसे आच्छादित हो गयीं। आकाशसे पृथ्वीपर अङ्गार बरसानेवाली उल्काएँ गिरने लगीं॥ ३॥

आदित्यो रजसा राजन् समवच्छन्नमण्डलः।
विरश्मिरुदये नित्यं कबन्धैः समदृश्यत॥ ४॥

राजन् ! सूर्यमण्डल धूलसे आच्छन्न हो गया था। उदयकालमें सूर्य तेजोहीन प्रतीत होते थे और उनका मण्डल प्रतिदिन अनेक कबन्धों (बिना सिरके धड़ों) से युक्त दिखायी देता था॥ ४॥

परिवेषाश्च दृश्यन्ते दारुणाश्चन्द्रसूर्ययोः।
त्रिवर्णाः श्यामरूक्षान्तास्तथा भस्मारुणप्रभाः॥ ५॥

चन्द्रमा और सूर्य दोनोंके चारों ओर भयानक घेरे दृष्टिगोचर होते थे। उन घेरोंमें तीन रंग प्रतीत होते थे। उनका किनारेका भाग काला एवं रूखा होता था। बीचमें भस्मके समान धूसर रंग दीखता था और भीतरी किनारेकी कान्ति अरुणवर्णकी दृष्टिगोचर होती थी॥ ५॥

एते चान्ये च बहव उत्पाता भयशंसिनः।
दृश्यन्ते बहवो राजन् हृदयोद्वेगकारकाः॥ ६॥

राजन् ! ये तथा और भी बहुत-से भयसूचक उत्पात दिखायी देने लगे, जो हृदयको उद्विग्न कर देनेवाले थे॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य कुरुराजो युधिष्ठिरः।
शुश्राव वृष्णिचक्रस्य मौसले कदनं कृतम्॥ ७॥
विमुक्तं वासुदेवं च श्रुत्वा रामं च पाण्डवः।
समानीयाब्रवीद् भ्रातॄन् किं करिष्याम इत्युत॥ ८॥

इसके थोड़े ही दिनों बाद कुरुराज युधिष्ठिरने यह समाचार सुना कि मूसलको निमित्त बनाकर आपसमें महान् युद्ध हुआ है; जिसमें समस्त वृष्णिवंशियोंका संहार हो गया। केवल भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ही उस विनाशसे बचे हुए हैं। यह सब सुनकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अपने समस्त भाइयोंको बुलाया और पूछा—'अब हमें क्या करना चाहिये ?'॥

परस्परं समासाद्य ब्रह्मदण्डबलात् कृतान्।
वृष्णीन् विनष्टांस्ते श्रुत्वा व्यथिताः पाण्डवाभवन्॥ ९॥
निधनं वासुदेवस्य समुद्रस्येव शोषणम्।
वीरा न श्रद्दधुस्तस्य विनाशं शार्ङ्गधन्वनः॥ १०॥

ब्राह्मणोंके शापके बलसे विवश हो आपसमें लड़-भिड़कर

सारे वृष्णिवंशी विनष्ट हो गये। यह बात सुनकर पाण्डवोंको बड़ी वेदना हुई। भगवान् श्रीकृष्णका वध तो समुद्रको सोख लेनेके समान असम्भव था; अतः उन वीरोंने भगवान् श्रीकृष्णके विनाशकी बातपर विश्वास नहीं किया॥ ९-१०॥

मौसलं ते समाश्रित्य दुःखशोकसमन्विताः।
विषण्णा हतसंकल्पाः पाण्डवाः समुपाविशन्॥ ११॥

इस मौसलकाण्डकी बातको लेकर सारे पाण्डव दुःख-शोकमें डूब गये। उनके मनमें विषाद छा गया और वे हताश हो मन मारकर बैठ गये॥ ११॥

जनमेजय उवाच

कथं विनष्टा भगवन्नन्धका वृष्णिभिः सह।
पश्यतो वासुदेवस्य भोजाश्चैव महारथाः॥ १२॥

जनमेजयने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीकृष्णके देखते-देखते वृष्णियोंसहित अन्धक तथा महारथी भोजवंशी क्षत्रिय कैसे नष्ट हो गये?॥ १२॥

वैशम्पायन उवाच

षट्त्रिंशेऽथ ततो वर्षे वृष्णीनामनयो महान्।
अन्योन्यं मुसलैस्ते तु निजघ्नुः कालचोदिताः॥ १३॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! महाभारतयुद्धके बाद छत्तीसवें वर्ष वृष्णिवंशियोंमें महान् अन्यायपूर्ण कलह आरम्भ हो गया। उसमें कालसे प्रेरित होकर उन्होंने एक-दूसरेको मूसलों (अरों) से मार डाला॥ १३॥

जनमेजय उवाच

केनानुशप्तास्ते वीराः क्षयं वृष्ण्यन्धका गताः।
भोजाश्च द्विजवर्य त्वं विस्तरेण वदस्व मे॥ १४॥

जनमेजयने पूछा—विप्रवर! वृष्णि, अन्धक तथा भोजवंशके उन वीरोंको किसने शाप दिया था, जिससे उनका संहार हो गया? आप यह प्रसङ्ग मुझे विस्तारपूर्वक बताइये॥

वैशम्पायन उवाच

विश्वामित्रं च कण्वं च नारदं च तपोधनम्।
सारणप्रमुखा वीरा ददृशुर्द्वारकां गतान्॥ १५॥
ते तान् साम्बं पुरस्कृत्य भूषयित्वा स्त्रियं यथा।
अब्रुवन्नुपसंगम्य दैवदण्डनिपीडिताः॥ १६॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! एक समयकी बात है, महर्षि विश्वामित्र, कण्व और तपस्याके धनी नारदजी द्वारकामें गये हुए थे। उस समय दैवके मारे हुए सारण आदि वीर साम्बको स्त्रीके वेषमें विभूषित करके उनके पास ले गये। उन सबने उन मुनियोंका दर्शन किया और इस प्रकार पूछा—॥ १५-१६॥



इयं स्त्री पुत्रकामस्य बभ्रोरमिततेजसः।
ऋषयः साधु जानीत किमियं जनयिष्यति॥ १७॥

'महर्षियो! यह स्त्री अमित तेजस्वी बभ्रुकी पत्नी है। बभ्रुके मनमें पुत्रकी बड़ी लालसा है। आपलोग ऋषि हैं; अतः अच्छी तरह सोचकर बतावें, इसके गर्भसे क्या उत्पन्न होगा?॥ १७॥

इत्युक्तास्ते तदा राजन् विप्रलम्भप्रधर्षिताः।
प्रत्यब्रुवंस्तान् मुनयो यत् तच्छृणु नराधिप॥ १८॥

राजन्! नरेश्वर! ऐसी बात कहकर उन यादवोंने जब ऋषियोंको धोखा दिया और इस प्रकार उनका तिरस्कार किया, तब उन्होंने उन बालकोंको जो उत्तर दिया, उसे सुनो॥ १८॥

वृष्ण्यन्धकविनाशाय मुसलं घोरमायसम्।
वासुदेवस्य दायादः साम्बोऽयं जनयिष्यति॥ १९॥
येन यूयं सुदुर्वृत्ता नृशंसा जातमन्यवः।
उच्छेत्तारः कुलं कृत्स्नमृते रामजनार्दनौ॥ २०॥
समुद्रं यास्यति श्रीमांस्त्यक्त्वा देहं हलायुधः।
जरा कृष्णं महात्मानं शयानं भुवि भेत्स्यति॥ २१॥
इत्यब्रुवन्त ते राजन् प्रलब्धास्तैर्दुरात्मभिः।
मुनयः क्रोधरक्ताक्षाः समीक्ष्याथ परस्परम्॥ २२॥

राजन्! उन दुर्बुद्धि बालकोंके वञ्चनापूर्ण बर्तावसे वे सभी महर्षि कुपित हो उठे। क्रोधसे उनकी आँखें लाल हो गयीं और वे एक-दूसरेकी ओर देखकर इस प्रकार बोले—'क्रूर, क्रोधी और दुराचारी यादवकुमारो! भगवान् श्रीकृष्णका यह पुत्र साम्ब एक भयंकर लोहेका मूसल उत्पन्न करेगा, जो वृष्णि और अन्धकवंशके विनाशका कारण होगा। उसीसे तुम

लोग बलराम और श्रीकृष्णके सिवा अपने शेष समस्त कुलका संहार कर डालेंगे। हलधारी श्रीमान् बलरामजी स्वयं ही अपने शरीरको त्यागकर समुद्रमें चले जायँगे और महात्मा श्रीकृष्ण जब भूतलपर सो रहे होंगे, उस समय जरा नामक व्याध उन्हें अपने बाणोंसे बींध डालेगा ॥ १९–२२ ॥

तथोक्त्वा मुनयस्ते तु ततः केशवमभ्ययुः।
अथाब्रवीत् तदा वृष्णीञ्छ्रुत्वैवं मधुसूदनः ॥ २३ ॥

ऐसा कहकर वे मुनि भगवान् श्रीकृष्णके पास चले गये। (वहाँ उन्होंने उनसे सारी बातें कह सुनायीं।) यह सब सुनकर भगवान् मधुसूदनने वृष्णिवंशियोंसे कहा—॥ २३ ॥

अन्तज्ञो मतिमांस्तस्य भवितव्यं तथेति तान्।
एवमुक्त्वा हृषीकेशः प्रविवेश पुरं तदा ॥ २४ ॥

'ऋषियोंने जैसा कहा है, वैसा ही होगा।' बुद्धिमान् श्रीकृष्ण सबके अन्तको जाननेवाले हैं। उन्होंने उपर्युक्त बात कहकर नगरमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥

कृतान्तमन्यथा नैच्छत् कर्तुं स जगतः प्रभुः।
श्वोभूतेऽथ ततः साम्बो मुसलं तदसूत वै ॥ २५ ॥

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर हैं तथापि यदुवंशियोंपर आनेवाले उस कालको उन्होंने पलटनेकी इच्छा नहीं की। दूसरे दिन सबेरा होते ही साम्बने उस मूसलको जन्म दिया ॥ २५ ॥

येन वृष्ण्यन्धककुले पुरुषा भस्मसात् कृताः।
वृष्ण्यन्धकविनाशाय किंकरप्रतिमं महत् ॥ २६ ॥

वह वही मूसल था, जिसने वृष्णि और अन्धककुलके समस्त पुरुषोंको भस्मसात् कर दिया। वृष्णि और अन्धक-वंशके वीरोंका विनाश करनेके लिये वह महान् यमदूतके ही तुल्य था ॥ २६ ॥

असूत शापजं घोरं तच्च राज्ञे न्यवेदयन्।
विषण्णरूपस्तद् राजा सूक्ष्मं चूर्णमकारयत् ॥ २७ ॥

जब साम्बने उस शापजनित भयंकर मूसलको पैदा किया, तब यदुवंशियोंने उसे ले जाकर राजा उग्रसेनको दे दिया। उसे देखते ही राजाके मनमें विषाद छा गया। उन्होंने उस मूसलको कुटवाकर अत्यन्त महीन चूर्ण करा दिया ॥

तच्चूर्णं सागरे चापि प्राक्षिपन् पुरुषा नृप।
अघोषयंश्च नगरे वचनादाहुकस्य ते ॥ २८ ॥
जनार्दनस्य रामस्य बभ्रोश्चैव महात्मनः।
अद्यप्रभृति सर्वेषु वृष्ण्यन्धककुलेष्विह ॥ २९ ॥
सुरासवो न कर्तव्यः सर्वैर्नगरवासिभिः।

नरेश्वर! राजाकी आज्ञासे उनके सेवकोंने उस लोहचूर्ण-को समुद्रमें फेंक दिया। फिर उग्रसेन, भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम और महामना बभ्रुके आदेशसे राजपुरुषोंने नगरमें यह घोषणा करा दी कि 'आजसे समस्त वृष्णिवंशी और अन्धकवंशी क्षत्रियोंके यहाँ कोई भी नगरनिवासी मदिरा न तैयार करें ॥ २८-२९½ ॥

यश्च नोऽविदितं कुर्यात् पेयं कश्चिन्नरः क्वचित् ॥ ३० ॥
जीवन् स शूलमारोहेत् स्वयं कृत्वा सबान्धवः।

'जो मनुष्य कहीं भी हमलोगोंसे छिपकर कोई नशीली पीनेकी वस्तु तैयार करेगा, वह स्वयं वह अपराध करके जीते-जी अपने भाई-बन्धुओंसहित शूलीपर चढ़ा दिया जायगा' ॥

ततो राजभयात् सर्वे नियमं चक्रिरे तदा।
नराः शासनमाज्ञाय रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ३१ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले बलरामजीका यह शासन समझकर सब लोगोंने राजाके भयसे यह नियम बना लिया कि 'आजसे न तो मदिरा बनाना है न पीना' ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि मुसलोत्पत्तौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें मुसलकी उत्पत्तिविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

द्वारकामें भयंकर उत्पात देखकर भगवान् श्रीकृष्णका यदुवंशियोंको तीर्थयात्राके लिये आदेश देना

वैशम्पायन उवाच

एवं प्रयतमानानां वृष्णीनामन्धकैः सह।
कालो गृहाणि सर्वेषां परिचक्राम नित्यशः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार वृष्णि और अन्धकवंशके लोग अपने ऊपर आनेवाले संकटका निवारण करनेके लिये भाँति-भाँतिके प्रयत्न कर रहे थे और उधर काल प्रतिदिन सबके घरोंमें चक्कर लगाया करता था ॥ १ ॥

करालो विकटो मुण्डः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः।
गृहाण्यावेक्ष्य वृष्णीनां नादृश्यत क्वचित् क्वचित् ॥ २ ॥

उसका स्वरूप विकराल और वेष विकट था। उसके शरीरका रंग काला और पीला था। वह मूँड़ मुड़ाये हुए पुरुषके रूपमें वृष्णिवंशियोंके घरोंमें प्रवेश करके सबको देखता और कभी-कभी अदृश्य हो जाता था ॥ २ ॥

तमघ्नन्त महेष्वासाः शरैः शतसहस्रशः।

न चाशक्यत वेद्धुं स सर्वभूतात्ययस्तदा ॥ ३ ॥

उसे देखनेपर बड़े-बड़े धनुर्धर वीर उसके ऊपर लाखों बाणोंका प्रहार करते थे; परंतु सम्पूर्ण भूतोंका विनाश करनेवाले उस कालको वे वेध नहीं पाते थे ॥ ३ ॥

उत्पेदिरे महावाता दारुणाश्च दिने दिने ।
वृष्ण्यन्धकविनाशाय बहवो लोमहर्षणाः ॥ ४ ॥

अब प्रतिदिन अनेक बार भयंकर आँधी उठने लगी, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाली थी। उससे वृष्णियों और अन्धकोंके विनाशकी सूचना मिल रही थी ॥ ४ ॥

विवृद्धमूषिका रथ्या विभिन्नमणिकास्तथा ।
केशा नखाश्च सुप्तानामद्यन्ते मूषिकैर्निशि ॥ ५ ॥

चूहे इतने बढ़ गये थे कि वे सड़कोंपर छाये रहते थे। मिट्टीके बरतनोंमें छेद कर देते थे तथा रातमें सोये हुए मनुष्योंके केश और नख कुतरकर खा जाया करते थे ॥ ५ ॥

चीचीकूचीति वाशन्ति सारिका वृष्णिवेश्मसु ।
नोपशाम्यति शब्दश्च स दिवारात्रमेव हि ॥ ६ ॥

वृष्णिवंशियोंके घरोंमें मैनाएँ दिन-रात चें-चें किया करती थीं। उनकी आवाज कभी एक क्षणके लिये भी बंद नहीं होती थी ॥ ६ ॥

अन्वकुर्वन्नुलूकानां सारसा विरुतं तथा ।
अजाः शिवानां विरुतमन्वकुर्वत भारत ॥ ७ ॥

भारत! सारस उल्लुओंकी और बकरे गीदड़ोंकी बोलीकी नकल करने लगे ॥ ७ ॥

पाण्डुरा रक्तपादाश्च विहगाः कालचोदिताः ।
वृष्ण्यन्धकानां गेहेषु कपोता व्यचरंस्तदा ॥ ८ ॥

कालकी प्रेरणासे वृष्णियों और अन्धकोंके घरोंमें सफेद पंख और लाल पैरोंवाले कबूतर घूमने लगे ॥ ८ ॥

व्यजायन्त खरा गोषु करभाऽश्वतरीषु च ।
शुनीष्वपि बिडालाश्च मूषिका नकुलीषु च ॥ ९ ॥

गौओंके पेटसे गदहे, खचरियोंसे हाथी, कुतियोंसे बिलाव और नेवलियोंके गर्भसे चूहे पैदा होने लगे ॥ ९ ॥

नापत्रपन्त पापानि कुर्वन्तो वृष्णयस्तदा ।
प्राद्विषन् ब्राह्मणांश्चापि पितॄन् देवांस्तथैव च ॥ १० ॥

उन दिनों वृष्णिवंशी खुल्लमखुल्ला पाप करते और उसके लिये लज्जित नहीं होते थे। वे ब्राह्मणों, देवताओं और पितरोंसे भी द्वेष रखने लगे ॥ १० ॥

गुरूंश्चाप्यवमन्यन्ते न तु रामजनार्दनौ ।
पत्न्यः पतीनुच्चरन्त पत्नीश्च पतयस्तथा ॥ ११ ॥

इतना ही नहीं, वे गुरुजनोंका भी अपमान करते थे। केवल बलराम और श्रीकृष्णका ही तिरस्कार नहीं करते थे। पत्नियाँ पतियोंको और पति अपनी पत्नियोंको धोखा देने लगे ॥ ११ ॥

विभावसुः प्रज्वलितो वामं विपरिवर्तते ।
नीललोहितमञ्जिष्ठा विसृजन्नर्चिषः पृथक् ॥ १२ ॥

अग्निदेव प्रज्वलित होकर अपनी लपटोंको वामावर्त घुमाते थे। उनसे कभी नीले रंगकी, कभी रक्त वर्णकी और कभी मजीठके रंगकी पृथक्-पृथक् लपटें निकलती थीं ॥ १२ ॥

उदयास्तमने नित्यं पुर्यां तस्यां दिवाकरः ।
व्यदृश्यतासकृत् पुम्भिः कबन्धैः परिवारितः ॥ १३ ॥

उस नगरीमें रहनेवाले लोगोंको उदय और अस्तके समय सूर्यदेव प्रतिदिन बारंबार कबन्धोंसे घिरे दिखायी देते थे ॥ १३ ॥

महानसेषु सिद्धेषु संस्कृतेऽतीव भारत ।
आहार्यमाणे कृमयो व्यदृश्यन्त सहस्रशः ॥ १४ ॥

अच्छी तरह छौंक-बघारकर जो रसोइयाँ तैयार की जाती थीं, उन्हें परोसकर जब लोग भोजनके लिये बैठते थे, तब उनमें हजारों कीड़े दिखायी देने लगते थे ॥ १४ ॥

पुण्याहे वाच्यमाने तु जपत्सु च महात्मसु ।
अभिधावन्तः श्रूयन्ते न चादृश्यत कश्चन ॥ १५ ॥

जब पुण्याहवाचन किया जाता और महात्मा पुरुष जप करने लगते थे, उस समय कुछ लोगोंके दौड़नेकी आवाज सुनायी देती थी; परंतु कोई दिखायी नहीं देता था ॥ १५ ॥

परस्परं च नक्षत्रं हन्यमानं पुनः पुनः ।
ग्रहैरपश्यन् सर्वे ते नात्मनस्तु कथंचन ॥ १६ ॥

सब लोग बारंबार यह देखते थे कि नक्षत्र आपसमें तथा ग्रहोंके साथ भी टकरा जाते हैं, परंतु कोई भी किसी तरह अपने नक्षत्रको नहीं देख पाता था ॥ १६ ॥

नदन्तं पाञ्चजन्यं च वृष्ण्यन्धकनिवेशने ।
समन्तात् पर्यवाशन्त रासभा दारुणस्वराः ॥ १७ ॥

जब भगवान् श्रीकृष्णका पाञ्चजन्य शङ्ख बजता था, तब वृष्णियों और अन्धकोंके घरके आसपास चारों ओर भयंकर स्वरवाले गदहे रेंकने लगते थे ॥ १७ ॥

एवं पश्यन् हृषीकेशः सम्प्राप्तं कालपर्ययम् ।
त्रयोदश्याममावास्यां तान् दृष्ट्वा प्राब्रवीदिदम् ॥ १८ ॥

इस तरह कालका उलट-फेर प्राप्त हुआ देख और त्रयोदशी तिथिको अमावास्याका संयोग जान भगवान् श्रीकृष्णने सब लोगोंसे कहा— ॥ १८ ॥

चतुर्दशी पञ्चदशी कृतेयं राहुणा पुनः ।
प्राप्ते वै भारते युद्धे प्राप्ता चाद्य क्षयाय नः ॥ १९ ॥

'वीरो! इस समय राहुने फिर चतुर्दशीको ही अमावास्या

बना दिया है। महाभारतयुद्धके समय जैसा योग था वैसा ही आज भी है। यह सब हमलोगोंके विनाशका सूचक है' ॥१९॥

विमृशन्नेव कालं तं परिचिन्त्य जनार्दनः।
मेने प्राप्तं स षट्त्रिंशं वर्षं वै केशिसूदनः ॥ २० ॥

इस प्रकार समयका विचार करते हुए केशिहन्ता श्रीकृष्णने जब उसका विशेष चिन्तन किया, तब उन्हें मालूम हुआ कि महाभारतयुद्धके बाद यह छत्तीसवाँ वर्ष आ पहुँचा ॥२०॥

पुत्रशोकाभिसंतप्ता गान्धारी हतबान्धवा।
यदनुव्याजहारार्ता तदिदं समुपागमत् ॥ २१ ॥

वे बोले—'बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर पुत्रशोकसे संतप्त हुई गान्धारी देवीने अत्यन्त व्यथित होकर हमारे कुलके लिये जो शाप दिया था, उसके सफल होनेका यह समय आ गया है ॥ २१ ॥

इदं च तदनुप्राप्तमब्रवीद् यद् युधिष्ठिरः।
पुरा व्यूढेष्वनीकेषु दृष्ट्वोत्पातान् सुदारुणान् ॥ २२ ॥

'पूर्वकालमें कौरव-पाण्डवोंकी सेनाएँ जब व्यूहबद्ध होकर आमने-सामने खड़ी हुईं, उस समय भयानक उत्पातोंको देखकर युधिष्ठिरने जो कुछ कहा था, वैसा ही लक्षण इस समय भी उपस्थित है' ॥ २२ ॥

इत्युक्त्वा वासुदेवस्तु चिकीर्षुः सत्यमेव तत्।
आज्ञापयामास तदा तीर्थयात्रामरिंदमः ॥ २३ ॥

ऐसा कहकर शत्रुदमन भगवान् श्रीकृष्णने गान्धारीके उस कथनको सत्य करनेकी इच्छासे यदुवंशियोंको उस समय तीर्थयात्राके लिये आज्ञा दी ॥ २३ ॥

अघोषयन्त पुरुषास्तत्र केशवशासनात्।
तीर्थयात्रा समुद्रे वः कार्येति पुरुषर्षभाः ॥ २४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके आदेशसे राजकीय पुरुषोंने उस पुरीमें यह घोषणा कर दी कि 'पुरुषप्रवर यादवो! तुम्हें समुद्रमें ही तीर्थयात्राके लिये चलना चाहिये। अर्थात् सबको प्रभासक्षेत्रमें उपस्थित होना चाहिये' ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि उत्पातदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें उत्पातदर्शनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

कृतवर्मा आदि समस्त यादवोंका परस्पर संहार

वैशम्पायन उवाच

काली स्त्री पाण्डुरैर्दन्तैः प्रविश्य हसती निशि।
स्त्रियः स्वप्नेषु मुष्णन्ती द्वारकां परिधावति ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! द्वारकाके लोग रातको स्वप्नोंमें देखते थे कि एक काले रंगकी स्त्री अपने सफेद दाँतोंको दिखा-दिखाकर हँसती हुई आयी है और घरोंमें प्रवेश करके स्त्रियोंका सौभाग्य-चिह्न लूटती हुई सारी द्वारकामें दौड़ लगा रही है ॥ १ ॥

अग्निहोत्रनिकेतेषु वास्तुमध्येषु वेश्मसु।
वृष्ण्यन्धकानखादन्त स्वप्ने गृध्रा भयानकाः ॥ २ ॥

अग्निहोत्रगृहोंमें जिनके मध्यभागमें वास्तुकी पूजा-प्रतिष्ठा हुई है, ऐसे घरोंमें भयंकर गृध्र आकर वृष्णि और अन्धक-वंशके मनुष्योंको पकड़-पकड़कर खा रहे हैं। यह भी स्वप्नमें दिखायी देता था ॥ २ ॥

अलंकाराश्च छत्रं च ध्वजाश्च कवचानि च।
ह्रियमाणान्यदृश्यन्त रक्षोभिः सुभयानकैः ॥ ३ ॥

अत्यन्त भयानक राक्षस उनके आभूषण, छत्र, ध्वजा और कवच चुराकर भागते देखे जाते थे ॥ ३ ॥

तच्चाग्निदत्तं कृष्णस्य वज्रनाभमयोमयम्।
दिवमाचक्रमे चक्रं वृष्णीनां पश्यतां तदा ॥ ४ ॥

जिसकी नाभिमें वज्र लगा हुआ था, जो सब-का-सब लोहेका ही बना था, वह अग्निदेवका दिया हुआ श्रीविष्णुका चक्र वृष्णिवंशियोंके देखते-देखते दिव्य लोकमें चला गया ॥४॥

युक्तं रथं दिव्यमादित्यवर्णं
हया हरन् पश्यतो दारुकस्य।
ते सागरस्योपरिष्टादवर्तन्
मनोजवाश्चतुरो वाजिमुख्याः ॥ ५ ॥

भगवान्‌का जो सूर्यके समान तेजस्वी और जुता हुआ दिव्य रथ था, उसे दारुकके देखते-देखते घोड़े उड़ा ले गये। वे मनके समान वेगशाली चारों श्रेष्ठ घोड़े समुद्रके जलके ऊपर-ऊपरसे ही चले गये ॥ ५ ॥

तालः सुपर्णश्च महाध्वजौ तौ
सुपूजितौ रामजनार्दनाभ्याम्।
उच्चैर्जह्रुरप्सरसो दिवानिशं
वाचश्चोचुर्गम्यतां तीर्थयात्रा ॥ ६ ॥

बलराम और श्रीकृष्ण जिनकी सदा पूजा करते थे, उन ताल और गरुड़के चिह्नसे युक्त दोनों विशाल ध्वजोंको अप्सराएँ ऊँचे उठा ले गयीं और दिन-रात लोगोंसे यह बात कहने लगीं कि 'अब तुमलोग तीर्थयात्राके लिये निकलो' ॥६॥

ततो जिगमिषन्तस्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
सान्तःपुरास्तदा तीर्थयात्रामैच्छन् नरर्षभाः ॥ ७ ॥

तदनन्तर पुरुषश्रेष्ठ वृष्णि और अन्धक महारथियोंने अपनी स्त्रियोंके साथ उस समय तीर्थयात्रा करनेका विचार किया। अब उनमें द्वारका छोड़कर अन्यत्र जानेकी इच्छा हो गयी थी ॥ ७ ॥

ततो भोज्यं च भक्ष्यं च पेयं चान्धकवृष्णयः ।
बहु नानाविधं चक्रुर्मद्यं मांसमनेकशः ॥ ८ ॥

तब अन्धकों और वृष्णियोंने नाना प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, पेय, मद्य और भाँति-भाँतिके मांस तैयार कराये ॥ ८ ॥

ततः सैनिकवर्गाश्च निर्ययुर्नगराद् बहिः ।
यानैरश्वैर्गजैश्चैव श्रीमन्तस्तिग्मतेजसः ॥ ९ ॥

इसके बाद सैनिकोंके समुदाय, जो शोभासम्पन्न और प्रचण्ड तेजस्वी थे, रथ, घोड़े और हाथियोंपर सवार होकर नगरसे बाहर निकले ॥ ९ ॥

ततः प्रभासे न्यवसन् यथोद्दिष्टं यथागृहम् ।
प्रभूतभक्ष्यपेयास्ते सदारा यादवास्तदा ॥ १० ॥

उस समय स्त्रियोंसहित समस्त यदुवंशी प्रभासक्षेत्रमें पहुँचकर अपने-अपने अनुकूल घरोंमें ठहर गये। उनके साथ खाने-पीनेकी बहुत-सी सामग्री थी ॥ १० ॥

निविष्टांस्तान् निशम्याथ समुद्रान्ते स योगवित् ।
जगामामन्त्र्य तान् वीरानुद्धवोऽर्थविशारदः ॥ ११ ॥

परमार्थ-ज्ञानमें कुशल और योगवेत्ता उद्धवजीने देखा कि समस्त वीर यदुवंशी समुद्रतटपर डेरा डाले बैठे हैं। तब वे उन सबसे पूछकर— विदा लेकर वहाँसे चल दिये ॥ ११ ॥

तं प्रस्थितं महात्मानमभिवाद्य कृताञ्जलिम् ।
जानन् विनाशं वृष्णीनां नैच्छद् वारयितुं हरिः ॥ १२ ॥

महात्मा उद्धव भगवान् श्रीकृष्णको हाथ जोड़कर प्रणाम करके जब वहाँसे प्रस्थित हुए, तब श्रीकृष्णने उन्हें वहाँ रोकनेकी इच्छा नहीं की; क्योंकि वे जानते थे कि यहाँ ठहरे हुए वृष्णिवंशियोंका विनाश होनेवाला है ॥ १२ ॥

ततः कालपरीतास्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
अपश्यन्नुद्धवं यान्तं तेजसाऽऽवृत्य रोदसी ॥ १३ ॥

कालसे घिरे हुए वृष्णि और अन्धक महारथियोंने देखा कि उद्धव अपने तेजसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त करके यहाँसे चले जा रहे हैं ॥ १३ ॥

ब्राह्मणार्थेषु यत् सिद्धमन्नं तेषां महात्मनाम् ।
तद् वानरेभ्यः प्रददुः सुरागन्धसमन्वितम् ॥ १४ ॥

उन महामनस्वी यादवोंके यहाँ ब्राह्मणोंको जिमानेके लिये जो अन्न तैयार किया गया था, उसमें मदिरा मिलाकर उसकी गन्धसे युक्त हुए उस भोजनको उन्होंने वानरोंको बाँट दिया॥

ततस्तूर्यशताकीर्णं नटनर्तकसंकुलम् ।
अवर्तत महापानं प्रभासे तिग्मतेजसाम् ॥ १५ ॥

तदनन्तर वहाँ सैकड़ों प्रकारके बाजे बजने लगे। सब ओर नटों और नर्तकोंका नृत्य होने लगा। इस प्रकार प्रभास क्षेत्रमें प्रचण्ड तेजस्वी यादवोंका वह महापान आरम्भ हुआ।

कृष्णस्य संनिधौ रामः सहितः कृतवर्मणा ।
अपिबद् युयुधानश्च गदो बभ्रुस्तथैव च ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णके पास ही कृतवर्मासहित बलराम, सात्यकि, गद और बभ्रु पीने लगे ॥ १६ ॥

ततः परिषदो मध्ये युयुधानो मदोत्कटः ।
अब्रवीत् कृतवर्माणमवहास्यावमन्य च ॥ १७ ॥

पीते-पीते सात्यकि मदसे उन्मत्त हो उठे और यादवोंकी उस सभामें कृतवर्माका उपहास तथा अपमान करते हुए इस प्रकार बोले—॥ १७ ॥

कः क्षत्रियोऽहन्यमानः सुप्तान् हन्यान्मृतानिव ।
तन्न मृष्यन्ति हार्दिक्य यादवा यत् त्वया कृतम् ॥ १८ ॥

'हार्दिक्य ! तेरे सिवा दूसरा कौन ऐसा क्षत्रिय होगा, जो अपने ऊपर आघात न होते हुए भी रातमें मुर्दोंके समान अचेत पड़े हुए मनुष्योंकी हत्या करेगा। तूने जो अन्याय किया है, उसे यदुवंशी कभी क्षमा नहीं करेंगे' ॥ १८ ॥

इत्युक्ते युयुधानेन पूजयामास तद्वचः ।
प्रद्युम्नो रथिनां श्रेष्ठो हार्दिक्यमवमन्य च ॥ १९ ॥

सात्यकिके ऐसा कहनेपर रथियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नने कृतवर्माका तिरस्कार करके सात्यकिके उपर्युक्त वचनकी प्रशंसा एवं अनुमोदन किया ॥ १९ ॥

ततः परमसंक्रुद्धः कृतवर्मा तमब्रवीत् ।
निर्दिशन्निव सावज्ञं तदा सव्येन पाणिना ॥ २० ॥

यह सुनकर कृतवर्मा अत्यन्त कुपित हो उठा और बायें हाथसे अंगुलिका इशारा करके सात्यकिका अपमान करता हुआ बोला—॥ २० ॥

भूरिश्रवाश्छिन्नबाहुर्युद्धे प्रायगतस्त्वया ।
वधेन सुनृशंसेन कथं वीरेण पातितः ॥ २१ ॥

'अरे ! युद्धमें भूरिश्रवाकी बाँह कट गयी थी और वे मरणान्त उपवासका निश्चय करके पृथ्वीपर बैठ गये थे, उस अवस्थामें तूने वीर कहलाकर भी उनकी क्रूरतापूर्ण हत्या क्यों की ?' ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा केशवः परवीरहा ।
तिर्यक्सरोषया दृष्ट्या वीक्षांचक्रे स मन्युमान् ॥ २२ ॥

कृतवर्माकी यह बात सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको क्रोध आ गया। उन्होंने रोषपूर्ण टेढ़ी दृष्टिसे उसकी ओर देखा ॥ २२ ॥

मणिः स्यमन्तकश्चैव यः स सत्राजितोऽभवत् ।
तां कथां श्रावयामास सात्यकिर्मधुसूदनम् ॥ २३ ॥

उस समय सात्यकिने मधुसूदनको सत्राजित्के पास जो स्यमन्तकमणि थी, उसकी कथा कह सुनायी (अर्थात् यह

बताया कि कृतवर्माने ही मणिके लोभसे सत्राजित्का वध करवाया था) ॥ २३ ॥

तच्छ्रुत्वा केशवस्याङ्कमगमद् रुदती तदा।
सत्यभामा प्रकुपिता कोपयन्ती जनार्दनम् ॥ २४ ॥

यह सुनकर सत्यभामाके क्रोधकी सीमा न रही। वह श्रीकृष्णका क्रोध बढ़ाती और रोती हुई उनके अङ्कमें चली गयी ॥ २४ ॥

तत उत्थाय सक्रोधः सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत्।
पञ्चानां द्रौपदेयानां धृष्टद्युम्नशिखण्डिनोः ॥ २५ ॥
एष गच्छामि पदवीं सत्येन च तथा शपे।
सौप्तिके ये च निहताः सुप्ता येन दुरात्मना ॥ २६ ॥
द्रोणपुत्रसहायेन पापेन कृतवर्मणा।
समाप्तमायुरस्याद्य यशश्चैव सुमध्यमे ॥ २७ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए सात्यकि उठे और इस प्रकार बोले—'सुमध्यमे ! यह देखो, मैं द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंके, धृष्टद्युम्नके और शिखण्डीके मार्गपर चलता हूँ, अर्थात् उनके मारनेका बदला लेता हूँ और सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि जिस पापी दुरात्मा कृतवर्माने द्रोणपुत्रका सहायक बनकर रातमें सोते समय उन वीरोंका वध किया था, आज उसकी भी आयु और यशका अन्त हो गया' ॥ २५–२७ ॥

इत्येवमुक्त्वा खड्गेन केशवस्य समीपतः।
अभिद्रुत्य शिरः क्रुद्धश्चिच्छेद कृतवर्मणः ॥ २८ ॥

ऐसा कहकर कुपित हुए सात्यकिने श्रीकृष्णके पाससे दौड़कर तलवारसे कृतवर्माका सिर काट लिया ॥ २८ ॥



तथान्यानपि निघ्नन्तं युयुधानं समन्ततः।
अभ्यधावद्धृषीकेशो विनिवारयितुं तदा ॥ २९ ॥

फिर वे दूसरे-दूसरे लोगोंका भी सब ओर घूमकर वध करने लगे। यह देख भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें रोकनेके लिये दौड़े ॥

एकीभूतास्ततः सर्वे कालपर्यायचोदिताः।
भोजान्धका महाराज शैनेयं पर्यवारयन् ॥ ३० ॥

महाराज ! इतनेहीमें कालकी प्रेरणासे भोज और अन्धक-वंशके समस्त वीरोंने एकमत होकर सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३० ॥

तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णमभिक्रुद्धाञ्जनार्दनः।
न चुक्रोध महातेजा जानन् कालस्य पर्ययम् ॥ ३१ ॥

उन्हें कुपित होकर तुरंत धावा करते देख महातेजस्वी श्रीकृष्ण कालके उलट-फेरको जाननेके कारण कुपित नहीं हुए॥

ते तु पानमदाविष्टाश्चोदिताः कालधर्मणा।
युयुधानमथाभ्यघ्नन्नुच्छिष्टैर्भाजनैस्तदा ॥ ३२ ॥

वे सब-के-सब मदिरापानजनित मदके आवेशसे उन्मत्त हो उठे थे। इधर कालधर्मा मृत्यु भी उन्हें प्रेरित कर रहा था। इसलिये वे जूठे बरतनोंसे सात्यकिपर आघात करने लगे ॥ ३२॥

हन्यमाने तु शैनेये क्रुद्धो रुक्मिणिनन्दनः।
तदनन्तरमागच्छन्मोक्षयिष्यन् शिनेः सुतम् ॥ ३३ ॥

जब सात्यकि इस प्रकार मारे जाने लगे, तब क्रोधमें भरे हुए रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न उन्हें संकटसे बचानेके लिये स्वयं उनके और आक्रमणकारियोंके बीचमें कूद पड़े ॥ ३३ ॥

स भोजैः सह संयुक्तः सात्यकिश्चान्धकैः सह।
व्यायच्छमानौ तौ वीरौ बाहुद्रविणशालिनौ ॥ ३४ ॥

प्रद्युम्न भोजोंसे भिड़ गये और सात्यकि अन्धकोंके साथ जूझने लगे। अपनी भुजाओंके बलसे सुशोभित होनेवाले वे दोनों वीर बड़े परिश्रमके साथ विरोधियोंका सामना करते रहे॥

बहुत्वान्निहतौ तत्र उभौ कृष्णस्य पश्यतः।
हतं दृष्ट्वा च शैनेयं पुत्रं च यदुनन्दनः ॥ ३५ ॥
एरकानां ततो मुष्टिं कोपाज्जग्राह केशवः।

परंतु विपक्षियोंकी संख्या बहुत अधिक थी; इसलिये वे दोनों श्रीकृष्णके देखते-देखते उनके हाथसे मार डाले गये। सात्यकि तथा अपने पुत्रको मारा गया देख यदुनन्दन श्रीकृष्ण-ने कुपित होकर एक मुट्ठी एरका उखाड़ ली ॥ ३५½ ॥

तदभून्मुसलं घोरं वज्रकल्पमयोमयम् ॥ ३६ ॥
जघान कृष्णस्तांस्तेन ये ये प्रमुखतोऽभवन्।

उनके हाथमें आते ही वह घास वज्रके समान भयंकर लोहेका मूसल बन गयी। फिर तो जो-जो सामने आये, उन सबको श्रीकृष्णने उसीसे मार गिराया ॥ ३६½ ॥

ततोऽन्धकाश्च भोजाश्च शैनेया वृष्णयस्तथा ॥ ३७ ॥
जघ्नुरन्योन्यमाक्रन्दे मुसलैः कालचोदिताः ।

उस समय कालसे प्रेरित हुए अन्धक, भोज, शिनि और वृष्णिवंशके लोगोंने उस भीषण मारकाटमें उन्हीं मूसलोंसे एक-दूसरेको मारना आरम्भ किया ॥ ३७½ ॥

यस्तेषामेरकां कश्चिज्जग्राह कुपितो नृप ॥ ३८ ॥
वज्रभूतेव सा राजन्नदृश्यत तदा विभो ।

नरेश्वर ! उनमेंसे जो कोई भी क्रोधमें आकर एरका नामक घास लेता, उसीके हाथमें वह वज्रके समान दिखायी देने लगती थी ॥ ३८½ ॥

तृणं च मुसलीभूतमपि तत्र व्यदृश्यत ॥ ३९ ॥
ब्रह्मदण्डकृतं सर्वमिति तद् विद्धि पार्थिव ।

पृथ्वीनाथ ! एक साधारण तिनका भी मूसल होकर दिखायी देता था; यह सब ब्राह्मणोंके शापका ही प्रभाव समझो ॥

अविध्यान् विध्यते राजन् प्रक्षिपन्ति स्म यत् तृणम् ॥
तद् वज्रभूतं मुसलं व्यदृश्यत तदा दृढम् ।

राजन् ! वे जिस किसी भी तृणका प्रहार करते, वह अभेद्य वस्तुका भी भेदन कर डालता था और वज्रमय मूसलके समान सुदृढ़ दिखायी देता था ॥ ४०½ ॥

अवधीत् पितरं पुत्रः पिता पुत्रं च भारत ॥ ४१ ॥
मत्ताः परिपतन्ति स्म योधयन्तः परस्परम् ।
पतङ्गा इव चाग्नौ ते निपेतुः कुकुरान्धकाः ॥ ४२ ॥

भरतनन्दन ! उस मूसलसे पिताने पुत्रको और पुत्रने पिताको मार डाला । जैसे पतिंगे आगमें कूद पड़ते हैं, उसी प्रकार कुकुर और अन्धकवंशके लोग परस्पर जूझते हुए एक दूसरेपर मतवाले होकर टूटते थे ॥ ४१-४२ ॥

नासीत् पलायने बुद्धिर्वध्यमानस्य कस्यचित् ।
तत्रापश्यन्महाबाहुर्जानन् कालस्य पर्ययम् ॥ ४३ ॥
मुसलं समवष्टभ्य तस्थौ स मधुसूदनः ।

वहाँ मारे जानेवाले किसी योद्धाके मनमें वहाँसे भाग जानेका विचार नहीं होता था । कालचक्रके इस परिवर्तनको जानते हुए महाबाहु मधुसूदन वहाँ चुपचाप सब कुछ देखते रहे और मूसलका सहारा लेकर खड़े रहे ॥ ४३½ ॥

साम्बं च निहतं दृष्ट्वा चारुदेष्णं च माधवः ॥ ४४ ॥
प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च ततश्चुक्रोध भारत ।

भारत ! श्रीकृष्ण जब अपने पुत्र साम्ब, चारुदेष्ण और प्रद्युम्नको तथा पोते अनिरुद्धको भी मारा गया देखा, तब उनकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी ॥ ४४½ ॥

गदं वीक्ष्य शयानं च भृशं कोपसमन्वितः ॥ ४५ ॥
स निःशेषं तदा चक्रे शार्ङ्गचक्रगदाधरः ।

अपने छोटे भाई गदको रणशय्यापर पड़ा देख वे अत्यन्त रोषसे आगबबूला हो उठे; फिर तो शार्ङ्गधनुष, चक्र और गदा धारण करनेवाले श्रीकृष्णने उस समय शेष बचे हुए समस्त यादवोंका संहार कर डाला ॥ ४५½ ॥

तन्निघ्नन्तं महातेजा बभ्रुः परपुरंजयः ॥ ४६ ॥
दारुकश्चैव दाशार्हमूचतुर्यन्निबोध तत् ।

शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाले महातेजस्वी बभ्रु और दारुकने उस समय यादवोंका संहार करते हुए श्रीकृष्णसे जो कुछ कहा, उसे सुनो—॥ ४६½ ॥

भगवन् निहताः सर्वे त्वया भूयिष्ठशो नराः ।
रामस्य पदमन्विच्छ तत्र गच्छाम यत्र सः ॥ ४७ ॥

'भगवन् ! अब सबका विनाश हो गया । इनमेंसे अधिकांश तो आपके हाथों मारे गये हैं । अब बलरामजीका पता लगाइये । अब हम तीनों उधर ही चलें, जिधर बलराम-जी गये हैं' ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि कृतवर्मादीनां परस्परहनने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें कृतवर्मा आदि समस्त यादवोंका संहारविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

दारुकका अर्जुनको सूचना देनेके लिये हस्तिनापुर जाना, बभ्रुका देहावसान एवं बलराम और श्रीकृष्णका परमधाम-गमन

वैशम्पायन उवाच

ततो ययुर्दारुकः केशवश्च
बभ्रुश्च रामस्य पदं पतन्तः ।
अथापश्यन् राममनन्तवीर्यं
वृक्षे स्थितं चिन्तयानं विविक्ते ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर दारुक, बभ्रु और भगवान् श्रीकृष्ण तीनों ही बलरामजीके चरणचिह्न देखते हुए वहाँसे चल दिये । थोड़ी ही देर बाद उन्होंने अनन्त पराक्रमी बलरामजीको एक वृक्षके नीचे विराजमान देखा, जो एकान्तमें बैठकर ध्यान कर रहे थे ॥ १ ॥

ततः समासाद्य महानुभावं
कृष्णस्तदा दारुकमन्वशासत् ।

गत्वा कुरून् सर्वमिमं महान्तं
पार्थाय शंसस्व वधं यदूनाम् ॥ २ ॥

उन महानुभावके पास पहुँचकर श्रीकृष्णने तत्काल दारुकको आज्ञा दी कि 'तुम शीघ्र ही कुरुदेशकी राजधानी हस्तिनापुरमें जाकर अर्जुनको यादवोंके इस महासंहारका सारा समाचार कह सुनाओ ॥ २ ॥

ततोऽर्जुनः क्षिप्रमिहोपयातु
श्रुत्वा मृतान् यादवान् ब्रह्मशापात्।
इत्येवमुक्तः स ययौ रथेन
कुरूंस्तदा दारुको नष्टचेताः ॥ ३ ॥

'ब्राह्मणोंके शापसे यदुवंशियोंकी मृत्युका समाचार पाकर अर्जुन शीघ्र ही द्वारका चले आवें।' श्रीकृष्णके इस प्रकार आज्ञा देनेपर दारुक रथपर सवार हो तत्काल कुरुदेशको चला गया। वह भी इस महान् शोकसे अचेत-सा हो रहा था॥

ततो गते दारुके केशवोऽथ
दृष्ट्वान्तिके बभ्रुमुवाच वाक्यम्।
स्त्रियो भवान् रक्षितुं यातु शीघ्रं
नैता हिंस्युर्दस्यवो वित्तलोभात् ॥ ४ ॥

दारुकके चले जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपने निकट खड़े हुए बभ्रुसे कहा—'आप स्त्रियोंकी रक्षाके लिये शीघ्र ही द्वारकाको चले जाइये। कहीं ऐसा न हो कि डाकू धनकी लालचसे उनकी हत्या कर डालें' ॥ ४ ॥

स प्रस्थितः केशवेनानुशिष्टो
मदातुरो ज्ञातिवधार्दितश्च।
तं विश्रान्तं संनिधौ केशवस्य
दुरन्तमेकं सहसैव बभ्रुम् ॥ ५ ॥
ब्रह्मानुशप्तमवधीन्महद् वै
कूटे युक्तं मुसलं लुब्धकस्य।
ततो दृष्ट्वा निहतं बभ्रुमाह
कृष्णोऽग्रजं भ्रातरमुग्रतेजाः ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर बभ्रु वहाँसे प्रस्थित हुए। वे मदिराके मदसे आतुर थे ही, भाई-बन्धुओंके वधसे भी अत्यन्त शोकपीड़ित थे। वे श्रीकृष्णके निकट अभी विश्राम कर ही रहे थे कि ब्राह्मणोंके शापके प्रभावसे उत्पन्न हुआ एक महान् दुर्धर्ष मूसल किसी व्याधके बाणसे लगा हुआ सहसा उनके ऊपर आकर गिरा। उसने तुरंत ही उनके प्राण ले लिये। बभ्रुको मारा गया देख उग्र तेजस्वी श्रीकृष्णने अपने बड़े भाईसे कहा—॥ ५-६ ॥

इहैव त्वं मां प्रतीक्षस्व राम
यावत् स्त्रियो ज्ञातिवशाः करोमि।
ततः पुरीं द्वारवतीं प्रविश्य
जनार्दनः पितरं प्राह वाक्यम् ॥ ७ ॥

'भैया बलराम! आप यहीं रहकर मेरी प्रतीक्षा करें। जबतक मैं स्त्रियोंको कुटुम्बी जनोंके संरक्षणमें सौंप आता हूँ।' यों कहकर श्रीकृष्ण द्वारिकापुरीमें गये और वहाँ अपने पिता वसुदेवजीसे बोले—॥ ७ ॥



स्त्रियो भवान् रक्षतु नः समग्रा
धनंजयस्यागमनं प्रतीक्षन्।
रामो वनान्ते प्रतिपालयन्मा-
मास्तेऽद्याहं तेन समागमिष्ये ॥ ८ ॥

'तात! आप अर्जुनके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए हमारे कुलकी समस्त स्त्रियोंकी रक्षा करें। इस समय बलरामजी मेरी राह देखते हुए वनके भीतर बैठे हैं। मैं आज ही वहाँ जाकर उनसे मिलूँगा॥ ८ ॥

दृष्टं मयेदं निधनं यदूनां
राज्ञां च पूर्वं कुरुपुङ्गवानाम्।
नाहं विना यदुभिर्यादवानां
पुरीमिमामशकं द्रष्टुमद्य ॥ ९ ॥

'मैंने इस समय यह यदुवंशियोंका विनाश देखा है और पूर्वकालमें कुरुकुलके श्रेष्ठ राजाओंका भी संहार देख चुका हूँ। अब मैं उन यादव वीरोंके विना उनकी इस पुरीको देखनेमें भी असमर्थ हूँ॥ ९ ॥

तपश्चरिष्यामि निबोध तन्मे
रामेण सार्धं वनमभ्युपेत्य।
इतीदमुक्त्वा शिरसा च पादौ
संस्पृश्य कृष्णस्त्वरितो जगाम ॥ १० ॥

'अब मुझे क्या करना है, यह सुन लीजिये। वनमें जाकर मैं बलरामजीके साथ तपस्या करूँगा।' ऐसा कहकर उन्होंने

अपने सिरसे पिताके चरणोंका स्पर्श किया। फिर वे भगवान् श्रीकृष्ण वहाँसे तुरंत चल दिये ॥ १० ॥

ततो महान् निनदः प्रादुरासीत्
सस्त्रीकुमारस्य पुरस्य तस्य।
अथाब्रवीत् केशवः संनिवर्त्य
शब्दं श्रुत्वा योषितां क्रोशतीनाम् ॥ ११ ॥

इतनेहीमें उस नगरकी स्त्रियों और बालकोंके रोनेका महान् आर्तनाद सुनायी पड़ा। विलाप करती हुई उन युवतियोंके करुणक्रन्दन सुनकर श्रीकृष्ण पुनः लौट आये और उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले—॥ ११ ॥

पुरीमिमामेष्यति सव्यसाची
स वो दुःखान्मोचयिता नराग्र्यः।
ततो गत्वा केशवस्तं ददर्श
रामं वने स्थितमेकं विविक्ते ॥ १२ ॥

'देखिये! नरश्रेष्ठ अर्जुन शीघ्र ही इस नगरमें आनेवाले हैं। वे तुम्हें संकटसे बचायेंगे।' यह कहकर वे चले गये। वहाँ जाकर श्रीकृष्णने वनके एकान्त प्रदेशमें बैठे हुए बलरामजीका दर्शन किया॥ १२ ॥

अथापश्यद् योगयुक्तस्य तस्य
नागं मुखान्निश्चरन्तं महान्तम्।
श्वेतं ययौ स ततः प्रेक्ष्यमाणो
महार्णवो येन महानुभावः ॥ १३ ॥

बलरामजी योगयुक्त हो समाधि लगाये बैठे थे। श्रीकृष्णने उनके मुखसे एक श्वेत वर्णके विशालकाय सर्पको निकलते देखा। उनसे देखा जाता हुआ वह महानुभाव नाग जिस ओर महासागर था, उसी मार्गपर चल दिया॥ १३ ॥



सहस्रशीर्षः पर्वताभोगवर्ष्मा
रक्ताननः स्वां तनुं तां विमुच्य।
सम्यक् च तं सागरः प्रत्यगृह्णा-
न्नागा दिव्याः सरितश्चैव पुण्याः ॥ १४ ॥

वह अपने पूर्व शरीरको त्यागकर इस रूपमें प्रकट हुआ था। उसके सहस्रों मस्तक थे। उसका विशाल शरीर पर्वतके विस्तार-सा जान पड़ता था। उसके मुखकी कान्ति लाल रंगकी थी। समुद्रने स्वयं प्रकट होकर उस नागका—साक्षात् भगवान् अनन्तका भलीभाँति स्वागत किया। दिव्य नागों और पवित्र सरिताओंने भी उनका सत्कार किया॥ १४ ॥

कर्कोटको वासुकिस्तक्षकश्च
पृथुश्रवा अरुणः कुञ्जरश्च।
मिश्री शङ्खः कुमुदः पुण्डरीक-
स्तथा नागो धृतराष्ट्रो महात्मा ॥ १५ ॥
ह्रादः क्राथः शितिकण्ठोग्रतेजा-
स्तथा नागौ चक्रमन्दातिषण्डौ।
नागश्रेष्ठो दुर्मुखश्चाम्बरीषः
स्वयं राजा वरुणश्चापि राजन् ॥ १६ ॥

राजन्! कर्कोटक, वासुकि, तक्षक, पृथुश्रवा, अरुण, कुञ्जर, मिश्री, शङ्ख, कुमुद, पुण्डरीक, महामना धृतराष्ट्र, ह्राद, क्राथ, शितिकण्ठ, उग्रतेजा, चक्रमन्द, अतिषण्ड, नागप्रवर दुर्मुख, अम्बरीष और स्वयं राजा वरुणने भी उनका स्वागत किया॥ १५-१६ ॥

प्रत्युद्गम्य स्वागतेनाभ्यनन्दं-
स्तेऽपूजयंश्चार्घ्यपाद्यक्रियाभिः।
ततो गते भ्रातरि वासुदेवो
जानन् सर्वा गतयो दिव्यदृष्टिः ॥ १७ ॥
वने शून्ये विचरंश्चिन्तयानो
भूमौ चाथ संविवेशाग्र्यतेजाः।
सर्वं तेन प्राक्तदा वित्तमासीद्
गान्धार्या यद् वाक्यमुक्तः स पूर्वम् ॥ १८ ॥

उपर्युक्त सब लोगोंने आगे बढ़कर उनकी अगवानी की, स्वागतपूर्वक अभिनन्दन किया और अर्घ्य-पाद्य आदि उपचारोंद्वारा उनकी पूजा सम्पन्न की। भाई बलरामके परमधाम पधारनेके पश्चात् सम्पूर्ण गतियोंको जाननेवाले दिव्यदर्शी भगवान् श्रीकृष्ण कुछ सोचते-विचारते हुए उस सूने वनमें विचरने लगे। फिर वे श्रेष्ठ तेजवाले भगवान् पृथ्वीपर बैठ गये। सबसे पहले उन्होंने वहाँ उस समय उन सारी बातोंको स्मरण किया, जिन्हें पूर्वकालमें गान्धारी देवीने कहा था॥ १७-१८ ॥



बलरामजीका परमधाम गमन

दुर्वाससा पायसोच्छिष्टलिप्ते
यच्चाप्युक्तं तच्च सस्मार वाक्यम् ।
स चिन्तयन्नन्धकवृष्णिनाशं
कुरुक्षयं चैव महानुभावः ॥ १९ ॥

जूठी खीरको शरीरमें लगानेके समय दुर्वासाने जो बात ही थी, उसका भी उन्हें स्मरण हो आया । फिर वे हानुभाव श्रीकृष्ण अन्धक, वृष्णि और कुरुकुलके नाशकी बात सोचने लगे ॥ १९ ॥

मेने ततः संक्रमणस्य कालं
ततश्चकारेन्द्रियसंनिरोधम् ।
तथा च लोकत्रयपालनार्थ-
मात्रेयवाक्यप्रतिपालनाय ॥ २० ॥

तत्पश्चात् उन्होंने तीनों लोकोंकी रक्षा तथा दुर्वासाके चनका पालन करनेके लिये अपने परम धाम पधारनेका उपयुक्त समय प्राप्त हुआ समझा तथा इसी उद्देश्यसे अपनी म्पूर्ण इन्द्रिय-वृत्तियोंका निरोध किया ॥ २० ॥

देवोऽपि सन् देहविमोक्षहेतो-
र्निमित्तमैच्छत् सकलार्थतत्त्ववित् ।
स संनिरुद्धेन्द्रियवाङ्मनास्तु
शिश्ये महायोगमुपेत्य कृष्णः ॥ २१ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण अर्थोंके तत्त्ववेत्ता और अविनाशी देवता हैं । तो भी उस समय उन्होंने देहमोक्ष या ऐहलौकिक लीलाका संवरण करनेके लिये किसी निमित्तके प्राप्त होनेकी इच्छा की । फिर वे मन, वाणी और इन्द्रियोंका निरोध करके महायोग (समाधि) का आश्रय ले पृथ्वीपर लेट गये ॥ २१ ॥

जराथ तं देशमुपाजगाम
लुब्धस्तदानीं मृगलिप्सुरुग्रः ।
स केशवं योगयुक्तं शयानं
मृगासक्तो लुब्धकः सायकेन ॥ २२ ॥
जराविध्यत् पादतले त्वरावां-
स्तं चाभितस्तज्जिघृक्षुर्जगाम ।
अथापश्यत् पुरुषं योगयुक्तं
पीताम्बरं लुब्धकोऽनेकबाहुम् ॥ २३ ॥

उसी समय जरानामक एक भयंकर व्याध मृगोंको मार ले जानेकी इच्छासे उस स्थानपर आया । उस समय श्रीकृष्ण योगयुक्त होकर सो रहे थे । मृगोंमें आसक्त हुए उस व्याधने श्रीकृष्णको भी मृग ही समझा और बड़ी उतावलीके साथ बाण मारकर उनके पैरके तलवेमें घाव कर दिया । फिर उस मृगको पकड़नेके लिये जब वह निकट आया, तब योगमें स्थित, चार भुजावाले, पीताम्बरधारी पुरुष भगवान् श्रीकृष्णपर उसकी दृष्टि पड़ी ॥ २२-२३ ॥

मत्वाऽऽत्मानं त्वपराद्धं स तस्य
पादौ जरा जगृहे शंकितात्मा ।
आश्वासयंस्तं महात्मा तदानीं
गच्छन्नूर्ध्वं रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या ॥ २४ ॥

अब तो जरा अपनेको अपराधी मानकर मन-ही-मन बहुत डर गया । उसने भगवान् श्रीकृष्णके दोनों पैर पकड़ लिये । तब महात्मा श्रीकृष्णने उसे आश्वासन दिया और अपनी कान्तिसे पृथ्वी एवं आकाशको व्याप्त करते हुए वे ऊर्ध्वलोकमें (अपने परमधामको) चले गये ॥ २४ ॥

दिवं प्राप्तं वासवोऽथाश्विनौ च
रुद्रादित्या वसवश्चाथ विश्वे ।
प्रत्युद्ययुर्मुनयश्चापि सिद्धा
गन्धर्वमुख्याश्च सहाप्सरोभिः ॥ २५ ॥

अन्तरिक्षमें पहुँचनेपर इन्द्र, अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, वसु, विश्वेदेव, मुनि, सिद्ध, अप्सराओंसहित मुख्य-मुख्य गन्धर्वोंने आगे बढ़कर भगवान्का स्वागत किया ॥

ततो राजन् भगवानुग्रतेजा
नारायणः प्रभवश्चाव्ययश्च ।
योगाचार्यो रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या
स्थानं प्राप स्वं महात्माप्रमेयम् ॥ २६ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् जगत्की उत्पत्तिके कारणरूप, उग्र-तेजस्वी, अविनाशी, योगाचार्य महात्मा भगवान् नारायण अपनी प्रभासे पृथ्वी और आकाशको प्रकाशमान करते हुए अपने अप्रमेयधामको प्राप्त हो गये ॥ २६ ॥

ततो देवैर्ऋषिभिश्चापि कृष्णः
समागतश्चारणैश्चैव राजन् ।
गन्धर्वाग्र्यैरप्सरोभिर्वराभिः
सिद्धैः साध्यैश्चानतैः पूज्यमानः ॥ २७ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ गन्धर्वों, सुन्दरी अप्सराओं, सिद्धों और साध्योंद्वारा विनीत भावसे पूजित हो देवताओं, ऋषियों तथा चारणोंसे भी मिले ॥ २७ ॥

तं वै देवाः प्रत्यनन्दन्त राजन्
मुनिश्रेष्ठा ऋग्भिरानर्चुरीशम् ।
तं गन्धर्वाश्चापि तस्थुः स्तुवन्तः
प्रीत्या चैनं पुरुहूतोऽभ्यनन्दत् ॥ २८ ॥

राजन् ! देवताओंने भगवान्का अभिनन्दन किया । श्रेष्ठ महर्षियोंने ऋग्वेदकी ऋचाओंद्वारा उनकी पूजा की । गन्धर्व स्तुति करते हुए खड़े रहे तथा इन्द्रने भी प्रेमवश उनका अभिनन्दन किया ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि श्रीकृष्णस्य स्वलोकगमने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें श्रीकृष्णका परमधामगमनविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

अर्जुनका द्वारकामें आना और द्वारका तथा श्रीकृष्ण-पत्नियोंकी दशा देखकर दुखी होना

वैशम्पायन उवाच

दारुकोऽपि कुरून् गत्वा दृष्ट्वा पार्थान् महारथान्।
आचष्ट मौसले वृष्णीनन्योन्येनोपसंहृतान्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दारुकने भी कुरुदेशमें जाकर महारथी कुन्तीकुमारोंका दर्शन किया और उन्हें यह बताया कि समस्त वृष्णिवंशी मौसलयुद्धमें एक दूसरेके द्वारा मार डाले गये॥ १॥

श्रुत्वा विनष्टान् वार्ष्णेयान् सभोजान्धककौकुरान्।
पाण्डवाः शोकसंतप्ता वित्रस्तमनसोऽभवन्॥ २॥

वृष्णि, भोज, अन्धक और कुकुरवंशके वीरोंका विनाश हुआ सुनकर समस्त पाण्डव शोकसे संतप्त हो उठे। वे मन-ही-मन संत्रस्त हो गये॥ २॥

ततोऽर्जुनस्तानामन्त्र्य केशवस्य प्रियः सखा।
प्रययौ मातुलं द्रष्टुं नेदमस्तीति चाब्रवीत्॥ ३॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्णके प्रिय सखा अर्जुन अपने भाइयोंसे पूछकर मामासे मिलनेके लिये चल दिये और बोले—'ऐसा नहीं हुआ होगा (समस्त यदुवंशियोंका एक साथ विनाश असम्भव है)'॥ ३॥

स वृष्णिनिलयं गत्वा दारुकेण सह प्रभो।
ददर्श द्वारकां वीरो मृतनाथामिव स्त्रियम्॥ ४॥

प्रभो! दारुकके साथ वृष्णियोंके निवासस्थानपर पहुँचकर वीर अर्जुनने देखा कि द्वारका नगरी विधवा स्त्रीकी भाँति श्रीहीन हो गयी है॥ ४॥

याः स्म ता लोकनाथेन नाथवत्यः पुराभवन्।
तास्त्वनाथास्तदा नाथं पार्थं दृष्ट्वा विचुक्रुशुः॥ ५॥
षोडशस्त्रीसहस्राणि वासुदेवपरिग्रहः।

पूर्वकालमें लोकनाथ श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित होनेके कारण जो सबसे अधिक सनाथा थीं, वे ही भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार अनाथा स्त्रियाँ अर्जुनको रक्षकके रूपमें आया देख उच्चस्वरसे करुणक्रन्दन करने लगीं॥ ५½॥

तासामासीन्महान् नादो दृष्ट्वैवार्जुनमागतम्॥ ६॥
तास्तु दृष्ट्वैव कौरव्यो बाष्पेणापिहितेक्षणः।
हीनाः कृष्णेन पुत्रैश्च नाशकत् सोऽभिवीक्षितुम्॥ ७॥

वहाँ पधारे हुए अर्जुनको देखते ही उन स्त्रियोंका आर्तनाद बहुत बढ़ गया। उन सबपर दृष्टि पड़ते ही अर्जुनकी आँखोंमें आँसू भर आये। पुत्रों और श्रीकृष्णसे हीन हुई उन अनाथ अबलाओंकी ओर उनसे देखा नहीं गया॥ ६-७॥

स तां वृष्ण्यन्धकजलां हयमीनां रथोडुपाम्।
वादित्ररथघोषौघां वेश्मतीर्थमहाह्रदाम्॥ ८
रत्नशैवलसंघातां वज्रप्राकारमालिनीम्।
रथ्यास्रोतोजलावर्तां चत्वरस्तिमितह्रदाम्॥ ९
रामकृष्णमहाग्राहां द्वारकां सरितं तदा।
कालपाशग्रहां भीमां नदीं वैतरणीमिव॥ १०
ददर्श वासविर्धीमान् विहीनां वृष्णिपुङ्गवैः।
गतश्रियं निरानन्दां पद्मिनीं शिशिरे यथा॥ ११

द्वारकापुरी एक नदीके समान थी। वृष्णि और अन्ध वंशके लोग उसके भीतर जलके समान थे। घोड़े मछली समान थे। रथ नावका काम करते थे। बाद्योंकी ध्वनि औ रथकी घरघराहट मानो उस नदीके बहते हुए जलका कलक नाद थी। लोगोंके घर ही तीर्थ एवं बड़े-बड़े जलाशय थे रत्नोंकी राशि ही वहाँ सेवारसमूहके समान शोभा पात थी। वज्र नामक मणिकी बनी हुई चहारदीवारी ही उसक तटपंक्ति थी। सड़कें और गलियाँ उसमें जलके सोते औ भँवरें थीं, चौराहे मानो उसके स्थिर जलवाले तालाब थे बलराम और श्रीकृष्ण उसके भीतर दो बड़े-बड़े ग्राह थे कालपाश ही उसमें मगर और घड़ियालके समान था। ऐस द्वारकारूपी नदीको बुद्धिमान् अर्जुनने वृष्णिवीरोंसे रहित ह जानेके कारण वैतरणीके समान भयानक देखा। वह शिशिर कालकी कमलिनीके समान श्रीहीन तथा आनन्दशून्य जा पड़ती थी॥ ८-११॥

तां दृष्ट्वा द्वारकां पार्थस्ताश्च कृष्णस्य योषितः।
सस्वनं बाष्पमुत्सृज्य निपपात महीतले॥ १२॥

वैसी द्वारकाको और उन श्रीकृष्णकी पत्नियोंको देखक अर्जुन आँसू बहाते हुए फूट-फूटकर रोने लगे और मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १२॥

सात्राजिती ततः सत्या रुक्मिणी च विशाम्पते।
अभिपत्य प्ररुरुदुः परिवार्य धनंजयम्॥ १३॥

प्रजानाथ! तब सत्राजित्की पुत्री सत्यभामा तथा रुक्मिणी आदि रानियाँ वहाँ दौड़ी आयीं और अर्जुनको घेरकर उच्च स्वरसे विलाप करने लगीं॥ १३॥

ततस्तं काञ्चने पीठे समुत्थाप्योपवेश्य च।
अब्रुवन्त्यो महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे॥ १४॥

तदनन्तर अर्जुनको उठाकर उन्होंने सोनेकी चौकीपर बिठाया और उन महात्माको घेरकर बिना कुछ बोले उनके पास बैठ गयीं॥ १४॥

ततः संस्तूय गोविन्दं कथयित्वा च पाण्डवः।

ाश्वास्य ताः स्त्रियश्चापि मातुलं द्रष्टुमभ्यगात्॥ १५ ॥

उस समय अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए उनकी कथा कही और उन रानियोंको आश्वासन देकर वे अपने मामासे मिलनेके लिये गये ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि अर्जुनागमने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें अर्जुनका आगमनविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

द्वारकामें अर्जुन और वसुदेवजीकी बातचीत

वैशम्पायन उवाच

ं शयानं महात्मानं वीरमानकदुन्दुभिम् ।
ुत्रशोकेन संतप्तं ददर्श कुरुपुङ्गवः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! मामाके महलमें हुँचकर कुरुश्रेष्ठ अर्जुनने देखा कि वीर महात्मा वसुदेवजी ुत्रशोकसे दुखी होकर पृथ्वीपर पड़े हुए हैं ॥ १ ॥

स्याश्रुपरिपूर्णाक्षो व्यूढोरस्को महाभुजः ।
ार्तस्यार्ततरः पार्थः पादौ जग्राह भारत ॥ २ ॥

भरतनन्दन ! चौड़ी छाती और विशाल भुजावाले कुन्ती-ुमार अर्जुन अपने शोकाकुल मामाकी वह दशा देखकर त्यन्त संतप्त हो उठे । उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये और न्होंने मामाके दोनों पैर पकड़ लिये ॥ २ ॥

स्य मूर्धानमाघ्रातुमियेषानकदुन्दुभिः ।
वस्रीयस्य महाबाहुर्न शशाक च शत्रुहन् ॥ ३ ॥

शत्रुघाती नरेश ! महाबाहु आनकदुन्दुभि (वसुदेव) ने ाहा कि मैं अपने भानजे अर्जुनका मस्तक सूँघ लूँ; परंतु समर्थतावश वे ऐसा न कर सके ॥ ३ ॥

समालिङ्ग्यार्जुनं वृद्धः स भुजाभ्यां महाभुजः ।
ुदन् पुत्रान् स्मरन् सर्वान् विललाप सुविह्वलः॥ ४ ॥
ातन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च दौहित्रान् ससखीनपि ।

महाबाहु बूढ़े वसुदेवजीने अपनी दोनों भुजाओंसे अर्जुनको ींचकर छातीसे लगा लिया और अपने समस्त पुत्रोंका स्मरण रके रोने लगे । फिर भाइयों, पुत्रों, पौत्रों, दौहित्रों और मित्रों-ी भी याद करके अत्यन्त व्याकुल हो वे विलाप करने लगे ॥

वसुदेव उवाच

र्जिता भूमिपालाश्च दैत्याश्च शतशोऽर्जुन ॥ ५ ॥
ान् दृष्ट्वा नेह पश्यामि जीवाम्यर्जुन दुर्मरः ।

वसुदेव बोले—अर्जुन ! जिन वीरोंने सैकड़ों दैत्यों था राजाओंपर विजय पायी थी, उन्हें आज यहाँ मैं नहीं ख पा रहा हूँ तो भी मेरे प्राण नहीं निकलते । जान पड़ता , मेरे लिये मृत्यु दुर्लभ है ॥ ५½ ॥



यौ तावर्जुन शिष्यौ ते प्रियौ बहुमतौ सदा ॥ ६ ॥
तयोरपनयात् पार्थ वृष्णयो निधनं गताः ।

अर्जुन ! जो तुम्हारे प्रिय शिष्य थे और जिनका तुम बहुत सम्मान किया करते थे, उन्हीं दोनों (सात्यकि और प्रद्युम्न) के अन्यायसे समस्त वृष्णिवंशी मृत्युको प्राप्त हो गये हैं ॥ ६½ ॥

यौ तौ वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवातिरथौ मतौ ॥ ७ ॥
प्रद्युम्नो युयुधानश्च कथयन् कत्थसे च यौ ।
तौ सदा कुरुशार्दूल कृष्णस्य प्रियभाजनौ ॥ ८ ॥
तावुभौ वृष्णिनाशस्य मुखमास्तां धनंजय ।

कुरुश्रेष्ठ धनंजय ! वृष्णिवंशके प्रमुख वीरोंमें जिन दोको ही अतिरथी माना जाता था तथा तुम भी चर्चा चलाकर जिनकी प्रशंसाके गीत गाते थे, वे श्रीकृष्णके प्रीतिभाजन प्रद्युम्न और सात्यकि ही इस समय वृष्णिवंशियोंके विनाशके प्रमुख कारण बने हैं ॥ ७-८½ ॥

न तु गर्हामि शैनेयं हार्दिक्यं चाहमर्जुन ॥ ९ ॥
अक्रूरं रौक्मिणेयं च शापो ह्येवात्र कारणम् ।

अथवा अर्जुन ! इस विषयमें मैं सात्यकि, कृतवर्मा, अक्रूर और प्रद्युम्नकी निन्दा नहीं करूँगा। वास्तवमें ऋषियोंका शाप ही यादवोंके इस सर्वनाशका प्रधान कारण है ॥ ९३ ॥

केशिनं यस्तु कंसं च विक्रम्य जगतः प्रभुः ॥ १० ॥
विदेहावकरोत् पार्थ चैद्यं च बलगर्वितम्।
नैषादिमेकलव्यं च चक्रे कालिङ्गमागधान् ॥ ११ ॥
गान्धारान् काशिराजं च मरुभूमौ च पार्थिवान्।
प्राच्यांश्च दाक्षिणात्यांश्च पर्वतीयांस्तथा नृपान् ॥ १२ ॥
सोऽभ्युपेक्षितवानेतमनयान्मधुसूदनः ।

कुन्तीनन्दन ! जिन जगदीश्वरने पराक्रम प्रकट करके केशी और कंसको देह-बन्धनसे मुक्त कर दिया। बलका घमंड रखनेवाले चेदिराज शिशुपाल, निषादपुत्र एकलव्य, कलिङ्गराज, मगधनिवासी क्षत्रिय, गान्धार, काशिराज तथा मरुभूमिके राजाओंको भी यमलोक भेज दिया था, जिन्होंने पूर्व, दक्षिण तथा पर्वतीय प्रान्तके नरेशोंका भी संहार कर डाला था, उन्हीं मधुसूदनने बालकोंकी अनीतिके कारण प्राप्त हुए इस संकटकी उपेक्षा कर दी ॥ १०—१२३ ॥

त्वं हि तं नारदश्चैव मुनयश्च सनातनम् ॥ १३ ॥
गोविन्दमनघं देवमभिजानीध्वमच्युतम्।
प्रत्यपश्यच्च स विभुर्ज्ञातिक्षयमधोक्षजः ॥ १४ ॥

तुम, देवर्षि नारद तथा अन्य महर्षि भी श्रीकृष्णको पापके सम्पर्कसे रहित, सनातन, अच्युत परमेश्वररूपसे जानते हैं। वे ही सर्वव्यापी अधोक्षज अपने कुटुम्बीजनोंके इस विनाशको चुपचाप देखते रहे ॥ १३-१४ ॥

समुपेक्षितवान् नित्यं स्वयं स मम पुत्रकः।
गान्धार्या वचनं यत् तदृषीणां च परंतप ॥ १५ ॥
तन्नूनमन्यथा कर्तुं नैच्छत् स जगतः प्रभुः।

परंतप अर्जुन ! मेरे पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए वे जगदीश्वर गान्धारी तथा महर्षियोंके शापको पलटना नहीं चाहते थे, इसीलिये उन्होंने सदा ही इस संकटकी उपेक्षा की ॥१५३ ॥

प्रत्यक्षं भवतश्चापि तव पौत्रः परंतप ॥ १६ ॥
अश्वत्थाम्ना हतश्चापि जीवितस्तस्य तेजसा।

परंतप ! तुम्हारा पौत्र परीक्षित् अश्वत्थामाद्वारा मार डाला गया था तो भी श्रीकृष्णके तेजसे वह जीवित हो गया। यह तो तुमलोगोंकी आँखों-देखी घटना है ॥ १६३ ॥

इमांस्तु नैच्छत् स्वाञ्ज्ञातीन् रक्षितुं च सखा तव॥ १७ ॥
ततः पुत्रांश्च पौत्रांश्च भ्रातॄनथ सखींस्तथा।
शयानान् निहतान् दृष्ट्वा ततो मामब्रवीदिदम् ॥ १८ ॥

इतने शक्तिशाली होते हुए भी तुम्हारे सखाने अपने इन भाई-बन्धुओंको प्राणसंकटसे बचानेकी इच्छा नहीं की। जब पुत्र, पौत्र, भाई और मित्र सभी एक दूसरेके हाथसे मरकर धराशायी हो गये, तब उन्हें उस अवस्थामें देखकर श्रीकृष्ण मेरे पास आये और इस प्रकार बोले— ॥ १७-१८ ॥

सम्प्राप्तोऽद्यायमस्यान्तः कुलस्य पुरुषर्षभ।
आगमिष्यति बीभत्सुरिमां द्वारवतीं पुरीम् ॥ १९ ॥
आख्येयं तस्य यद् वृत्तं वृष्णीनां वैशसं महत्।

'पुरुषप्रवर पिताजी ! आज इस कुलका संहार हो गया। अर्जुन द्वारकापुरीमें आनेवाले हैं। आनेपर उनसे वृष्णिवंशियोंके इस महान् विनाशका वृत्तान्त कहियेगा॥१९३॥

स तु श्रुत्वा महातेजा यदूनां निधनं प्रभो ॥ २० ॥
आगन्ता क्षिप्रमेवेह न मेऽत्रास्ति विचारणा।

'प्रभो ! अर्जुनके पास संदेश भी पहुँचा होगा। वे महातेजस्वी कुन्तीकुमार यदुवंशियोंके विनाशका यह समाचार सुनकर शीघ्र ही यहाँ आ पहुँचेंगे। इस विषयमें मेरा कोई अन्यथा विचार नहीं है ॥ २०३ ॥

योऽहं तमर्जुनं विद्धि योऽर्जुनः सोऽहमेव तु ॥ २१ ॥
यद् ब्रूयात् तत् तथा कार्यमिति बुद्ध्यस्व माधव।

'जो मैं हूँ उसे अर्जुन समझिये, जो अर्जुन हैं वह मैं ही हूँ। माधव ! अर्जुन जो कुछ भी कहें वैसा ही आपलोगोंको करना चाहिये। इस बातको अच्छी तरह समझ लें ॥२१३॥

स स्त्रीषु प्राप्तकालासु पाण्डवो बालकेषु च ॥ २२ ॥
प्रतिपत्स्यति बीभत्सुर्भवतश्चौर्ध्वदेहिकम्।

'जिन स्त्रियोंका प्रसवकाल समीप हो, उनपर और छोटे बालकोंपर अर्जुन विशेषरूपसे ध्यान देंगे और वे ही आपका और्ध्वदेहिक संस्कार भी करेंगे ॥ २२३ ॥

इमां च नगरीं सद्यः प्रतियाते धनंजये ॥ २३ ॥
प्राकाराट्टालकोपेतां समुद्रः प्लावयिष्यति।

'अर्जुनके चले जानेपर चहारदीवारी और अट्टालिकाओं सहित इस नगरीको समुद्र तत्काल डुबो देगा ॥ २३३ ॥

अहं देशे तु कस्मिंश्चित् पुण्ये नियममास्थितः ॥ २४ ॥
कालं काङ्क्षे सद्य एव रामेण सह धीमता।

'मैं किसी पवित्र स्थानमें रहकर शौच-संतोषादि नियमोंका आश्रय ले बुद्धिमान् बलरामजीके साथ शीघ्र ही कालकी प्रतीक्षा करूँगा' ॥ २४३ ॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशो मामचिन्त्यपराक्रमः ॥ २५ ॥
हित्वा मां बालकैः सार्धं दिशं कामप्यगात् प्रभुः।

ऐसा कहकर अचिन्त्य पराक्रमी प्रभावशाली श्रीकृष्ण बालकोंके साथ मुझे यहीं छोड़कर किसी अज्ञात दिशाको चले गये हैं ॥ २५३ ॥

सोऽहं तौ च महात्मानौ चिन्तयन् भ्रातरौ तव ॥ २६ ॥
घोरं ज्ञातिवधं चैव न भुञ्जे शोककर्शितः।
न भोक्ष्ये न च जीविष्ये दिष्ट्या प्राप्तोऽसि पाण्डव॥ २७

तबसे मैं तुम्हारे दोनों भाई महात्मा बलराम और श्रीकृष्णका तथा कुटुम्बीजनोंके इस घोर संहारका चिन्तन करके शोकसे गलता जा रहा हूँ। मुझसे भोजन नहीं कि



वसुदेवजी अर्जुनको यादव-विनाशका वृत्तान्त और श्रीकृष्णका संदेश सुना रहे हैं

जाता। अब मैं न तो भोजन करूँगा और न इस जीवनको ही रक्खूँगा। पाण्डुनन्दन ! सौभाग्यकी बात है कि तुम यहाँ आ गये ॥ २६-२७ ॥

यदुक्तं पार्थ कृष्णेन तत् सर्वमखिलं कुरु।
एतत् ते पार्थ राज्यं च स्त्रियो रत्नानि चैव हि ॥
इष्टान् प्राणानहं हीमांस्त्यक्ष्यामि रिपुसूदन ॥ २८ ॥

पार्थ ! श्रीकृष्णने जो कुछ कहा है, वह सब करो। यह राज्य, ये स्त्रियाँ और ये रत्न—सब तुम्हारे अधीन हैं। शत्रुसूदन ! अब मैं निश्चिन्त होकर अपने इन प्यारे प्राणोंका परित्याग करूँगा ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि अर्जुनवसुदेवसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें अर्जुन और वसुदेवका संवादविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

वसुदेवजी तथा मौसल युद्धमें मरे हुए यादवोंका अन्त्येष्टि-संस्कार करके अर्जुनका द्वारकावासी स्त्री-पुरुषोंको अपने साथ ले जाना, समुद्रका द्वारकाको डुबो देना और मार्गमें अर्जुनपर डाकुओंका आक्रमण, अवशिष्ट यादवोंको अपनी राजधानीमें बसा देना

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः स बीभत्सुर्मातुलेन परंतप।
दुर्मना दीनवदनो वसुदेवमुवाच ह ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—परंतप ! अपने मामा वसुदेवजीके ऐसा कहनेपर अर्जुन मन-ही-मन बहुत दुखी हुए। उनका मुख मलिन हो गया। वे वसुदेवजीसे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

नाहं वृष्णिप्रवीरेण बन्धुभिश्चैव मातुल।
विहीनां पृथिवीं द्रष्टुं शक्यामीह कथंचन ॥ २ ॥

'मामाजी ! वृष्णिवंशके प्रमुख वीर भगवान् श्रीकृष्ण तथा अपने भाइयोंसे हीन हुई यह पृथ्वी मुझसे अब किसी तरह देखी नहीं जा सकेगी ॥ २ ॥

राजा च भीमसेनश्च सहदेवश्च पाण्डवः।
नकुलो याज्ञसेनी च षडेकमनसो वयम् ॥ ३ ॥

'राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, पाण्डव सहदेव, नकुल, द्रौपदी तथा मैं—ये छः व्यक्ति एक ही हृदय रखते हैं (इनमेंसे कोई भी अब यहाँ रहना नहीं चाहेगा) ॥ ३ ॥

राज्ञः संक्रमणे चापि कालोऽयं वर्तते ध्रुवम्।
तमिमं विद्धि सम्प्राप्तं कालं कालविदां वर ॥ ४ ॥

'राजा युधिष्ठिरके भी परलोक-गमनका समय निश्चय ही आ गया है। कालज्ञोंमें श्रेष्ठ मामाजी ! यह वही काल प्राप्त हुआ है—ऐसा समझें ॥ ४ ॥

सर्वथा वृष्णिदारास्तु बालं वृद्धं तथैव च।
नयिष्ये परिगृह्याहमिन्द्रप्रस्थमरिंदम ॥ ५ ॥

'शत्रुदमन ! अब मैं वृष्णिवंशकी स्त्रियों, बालकों और बूढ़ोंको अपने साथ ले जाकर इन्द्रप्रस्थ पहुँचाऊँगा' ॥ ५ ॥

इत्युक्त्वा दारुकमिदं वाक्यमाह धनंजयः।
अमात्यान् वृष्णिवीराणां द्रष्टुमिच्छामि मा चिरम् ॥

मामासे यों कहकर अर्जुनने दारुकसे कहा—'अब मैं वृष्णिवंशी वीरोंके मन्त्रियोंसे शीघ्र मिलना चाहता हूँ' ॥ ६ ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं सुधर्मां यादवीं सभाम्।
प्रविवेशार्जुनः शूरः शोचमानो महारथान् ॥ ७ ॥

ऐसा कहकर शूरवीर अर्जुन यादव महारथियोंके लिये शोक करते हुए यादवोंकी सुधर्मा नामक सभामें प्रविष्ट हुए ॥ ७ ॥

तमासनगतं तत्र सर्वाः प्रकृतयस्तथा।
ब्राह्मणा नैगमास्तत्र परिवार्योपतस्थिरे ॥ ८ ॥

वहाँ एक सिंहासनपर बैठे हुए अर्जुनके पास मन्त्री आदि समस्त प्रकृतिवर्गके लोग तथा वेदवेत्ता ब्राह्मण आये और उन्हें सब ओरसे घेरकर पास ही बैठ गये ॥ ८ ॥

तान् दीनमनसः सर्वान् विमूढान् गतचेतसः।
उवाचेदं वचः काले पार्थो दीनतरस्तथा ॥ ९ ॥

उन सबके मनमें दीनता छा गयी थी। सभी किंकर्तव्य-विमूढ एवं अचेत हो रहे थे। अर्जुनकी दशा तो उनसे भी अधिक दयनीय थी। वे उन सभासदोंसे समयोचित वचन बोले—॥ ९ ॥

शक्रप्रस्थमहं नेष्ये वृष्ण्यन्धकजनं स्वयम्।
इदं तु नगरं सर्वं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ १० ॥
सज्जीकुरुत यानानि रत्नानि विविधानि च।
वज्रोऽयं भवतां राजा शक्रप्रस्थे भविष्यति ॥ ११ ॥

'मन्त्रियो ! मैं वृष्णि और अन्धकवंशके लोगोंको अपने साथ इन्द्रप्रस्थ ले जाऊँगा; क्योंकि समुद्र अब इस सारे नगरको डुबो देगा; अतः तुमलोग तरह-तरहके वाहन और रत्न लेकर तैयार हो जाओ। इन्द्रप्रस्थमें चलनेपर ये श्रीकृष्ण-पौत्र वज्र तुमलोगोंके राजा बनाये जायँगे ॥ १०-११ ॥

सप्तमे दिवसे चैव रवौ विमल उद्गते।
बहिर्वत्स्यामहे सर्वे सज्जीभवत मा चिरम् ॥ १२ ॥

'आजके सातवें दिन निर्मल सूर्योदय होते ही हम सब

लोग इस नगरसे बाहर हो जायँगे। इसलिये सब लोग शीघ्र तैयार हो जाओ, विलम्ब न करो' ॥ १२ ॥

इत्युक्तास्तेन ते सर्वे पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा।
सज्जमाशु ततश्चक्रुः स्वसिद्ध्यर्थं समुत्सुकाः ॥ १३ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले अर्जुनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर समस्त मन्त्रियोंने अपनी अभीष्टसिद्धिके लिये अत्यन्त उत्सुक होकर शीघ्र ही तैयारी आरम्भ कर दी ॥ १३ ॥

तां रात्रिमवसत् पार्थः केशवस्य निवेशने।
महता शोकमोहेन सहसाभिपरिप्लुतः ॥ १४ ॥

अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके महलमें ही उस रातको निवास किया। वे वहाँ पहुँचते ही सहसा महान् शोक और मोहमें डूब गये ॥ १४ ॥

श्वोभूतेऽथ ततः शौरिर्वसुदेवः प्रतापवान्।
युक्त्वाऽऽत्मानं महातेजा जगाम गतिमुत्तमाम्॥ १५ ॥

सबेरा होते ही महातेजस्वी शूरनन्दन प्रतापी वसुदेवजीने अपने चित्तको परमात्मामें लगाकर योगके द्वारा उत्तम गति प्राप्त की ॥ १५ ॥

ततः शब्दो महानासीद् वसुदेवनिवेशने।
दारुणः क्रोशतीनां च रुदतीनां च योषिताम् ॥ १६ ॥

फिर तो वसुदेवजीके महलमें बड़ा भारी कुहराम मचा। रोती-चिल्लाती हुई स्त्रियोंका आर्तनाद बड़ा भयंकर प्रतीत होता था ॥ १६ ॥

प्रकीर्णमूर्धजाः सर्वा विमुक्ताभरणस्रजः।
उरांसि पाणिभिर्घ्नन्त्यो व्यलपन् करुणं स्त्रियः ॥ १७ ॥

उन सबके बाल खुले हुए थे। उन्होंने आभूषण और मालाएँ तोड़कर फेंक दी थीं और वे सारी स्त्रियाँ अपने हाथोंसे छाती पीटती हुई करुणाजनक विलाप कर रही थीं ॥ १७ ॥

तं देवकी च भद्रा च रोहिणी मदिरा तथा।
अन्वारोहन्त च तदा भर्तारं योषितां वराः ॥ १८ ॥

युवतियोंमें श्रेष्ठ देवकी, भद्रा, रोहिणी तथा मदिरा—ये सब-की-सब अपने पतिके साथ चितापर आरूढ़ होनेको उद्यत हो गयीं ॥ १८ ॥

ततः शौरिं नृयुक्तेन बहुमूल्येन भारत।
यानेन महता पार्थो बहिर्निष्क्रामयत् तदा ॥ १९ ॥

भारत ! तदनन्तर अर्जुनने एक बहुमूल्य विमान सजाकर उसपर वसुदेवजीके शवको सुलाया और मनुष्योंके कंधोंपर उठवाकर वे उसे नगरसे बाहर ले गये ॥ १९ ॥

तमन्वयुस्तत्र तत्र दुःखशोकसमन्विताः।
द्वारकावासिनः सर्वे पौरजानपदा हिताः ॥ २० ॥

उस समय समस्त द्वारकावासी तथा आनर्त जनपदके लोग जो यादवोंके हितैषी थे, वहाँ दुःख-शोकमें मग्न होकर वसुदेवजीके शवके पीछे-पीछे गये ॥ २० ॥

तस्याश्वमेधिकं छत्रं दीप्यमानाश्च पावकाः।
पुरस्तात् तस्य यानस्य याजकाश्च ततो ययुः ॥ २१ ॥

उनकी अरथीके आगे-आगे अश्वमेध-यज्ञमें उपयोग किया हुआ छत्र तथा अग्निहोत्रकी प्रज्वलित अग्नि लिये याजक ब्राह्मण चल रहे थे ॥ २१ ॥

अनुजग्मुश्च तं वीरं देव्यस्ता वै स्वलंकृताः।
स्त्रीसहस्रैः परिवृता वधूभिश्च सहस्रशः ॥ २२ ॥

वीर वसुदेवजीकी पत्नियाँ वस्त्र और आभूषणोंसे सज-धजकर हजारों पुत्र वधुओं तथा अन्य स्त्रियोंके साथ अपने पतिकी अरथीके पीछे-पीछे जा रही थीं ॥ २२ ॥

यस्तु देशः प्रियस्तस्य जीवतोऽभून्महात्मनः।
तत्रैनमुपसंकल्प्य पितृमेधं प्रचक्रिरे ॥ २३ ॥

महात्मा वसुदेवजीको अपने जीवनकालमें जो स्थान विशेष प्रिय था, वहीं ले जाकर अर्जुन आदिने उनका पितृ-मेधकर्म (दाह-संस्कार) किया ॥ २३ ॥

तं चिताग्निगतं वीरं शूरपुत्रं वराङ्गनाः।
ततोऽन्वारुरुहुः पत्न्यश्चतस्रः पतिलोकगाः ॥ २४ ॥

चिताकी प्रज्वलित अग्निमें सोये हुए वीर शूरपुत्र वसुदेवजीके साथ उनकी पूर्वोक्त चारों पत्नियाँ भी चितापर जा बैठीं और उन्हींके साथ भस्म हो पतिलोकको प्राप्त हुईं ॥ २४ ॥

तं वै चतसृभिः स्त्रीभिरन्वितं पाण्डुनन्दनः।
अदाहयच्चन्दनैश्च गन्धैरुच्चावचैरपि ॥ २५ ॥

चारों पत्नियोंसे संयुक्त हुए वसुदेवजीके शवका पाण्डुनन्दन अर्जुनने चन्दनकी लकड़ियों तथा नाना प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंद्वारा दाह किया ॥ २५ ॥

ततः प्रादुरभूच्छब्दः समिद्धस्य विभावसोः।
सामगानां च निर्घोषो नराणां रुदतामपि ॥ २६ ॥

उस समय प्रज्वलित अग्निका चट-चट शब्द, सामगान करनेवाले ब्राह्मणोंके वेदमन्त्रोच्चारणका गम्भीर घोष तथा रोते हुए मनुष्योंका आर्तनाद एक साथ ही प्रकट हुआ ॥ २६ ॥

ततो वज्रप्रधानास्ते वृष्ण्यन्धककुमारकाः।
सर्वे चैवोदकं चक्रुः स्त्रियश्चैव महात्मनः ॥ २७ ॥

इसके बाद वज्र आदि वृष्णि और अन्धकवंशके कुमारों तथा स्त्रियोंने महात्मा वसुदेवजीको जलाञ्जलि दी ॥ २७ ॥

अलुप्तधर्मस्तं धर्मं कारयित्वा स फाल्गुनः।
जगाम वृष्णयो यत्र विनष्टा भरतर्षभ ॥ २८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अर्जुनने कभी धर्मका लोप नहीं किया था। वह धर्मकृत्य पूर्ण कराकर अर्जुन उस स्थानपर गये जहाँ वृष्णियोंका संहार हुआ था ॥ २८ ॥

स तान् दृष्ट्वा निपतितान् कदने भृशदुःखितः।
बभूवातीव कौरव्यः प्राप्तकालं चकार ह ॥ २९ ॥

[त]था प्रधानतश्चैव चक्रे सर्वास्तथा क्रियाः ।
[ये] हता ब्रह्मशापेन मुसलैरेरकोद्भवैः ॥ ३० ॥

उस भीषण मारकाटमें मरकर धराशायी हुए यादवोंको [दे]खकर कुरुकुलनन्दन अर्जुनको बड़ा भारी दुःख हुआ । [उ]न्होंने ब्रह्मशापके कारण एरकासे उत्पन्न हुए मूसलोंद्वारा [मा]रे गये यदुवंशी वीरोंके बड़े-छोटेके क्रमसे सारे समयोचित [का]र्य (अन्त्येष्टि कर्म) सम्पन्न किये ॥ २९-३० ॥

[त]तः शरीरे रामस्य वासुदेवस्य चोभयोः ।
[अ]न्विष्य दाहयामास पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर विश्वस्त पुरुषोंद्वारा बलराम तथा वसुदेवनन्दन [श्र]ीकृष्ण दोनोंके शरीरोंकी खोज कराकर अर्जुनने उनका भी [द]ाह-संस्कार किया ॥ ३१ ॥

[स] तेषां विधिवत् कृत्वा प्रेतकार्याणि पाण्डवः ।
[स]प्तमे दिवसे प्रायाद् रथमारुह्य सत्वरः ॥ ३२ ॥

पाण्डुनन्दन अर्जुन उन सबके प्रेतकर्म विधिपूर्वक [स]म्पन्न करके तुरंत रथपर आरूढ़ हो सातवें दिन द्वारकासे [च]ल दिये ॥ ३२ ॥

[अ]श्वयुक्तै रथैश्चापि गोखरोष्ट्रयुतैरपि ।
[स्त्र]ियस्ता वृष्णिवीराणां रुदत्यः शोककर्शिताः ॥ ३३ ॥
[अ]नुजग्मुर्महात्मानं पाण्डुपुत्रं धनंजयम् ।

उनके साथ घोड़े, बैल, गधे और ऊँटोंसे जुते हुए [र]थोंपर बैठकर शोकसे दुर्बल हुई वृष्णिवंशी वीरोंकी पत्नियाँ [र]ोती हुई चलीं । उन सबने पाण्डुपुत्र महात्मा अर्जुनका अनुगमन किया ॥ ३३½ ॥

[भ]ृत्याश्चान्धकवृष्णीनां सादिनो रथिनश्च ये ॥ ३४ ॥
[व]ीरहीनं वृद्धबालं पौरजानपदास्तथा ।
[य]युस्ते परिवार्याथ कलत्रं पार्थशासनात् ॥ ३५ ॥

अर्जुनकी आज्ञासे अन्धकों और वृष्णियोंके नौकर, [घ]ुड़सवार, रथी तथा नगर और प्रान्तके लोग बूढ़े और बालकोंसे युक्त विधवा स्त्रियोंको चारों ओरसे घेरकर चलने [ल]गे ॥ ३४-३५ ॥

कुञ्जरैश्च गजारोहा ययुः शैलनिभैस्तथा ।
[स]पादरक्षैः संयुक्ताः सान्तरायुधिका ययुः ॥ ३६ ॥

हाथी-सवार पर्वताकार हाथियोंद्वारा गुप्तरूपसे अस्त्र-शस्त्र धारण किये यात्रा करने लगे । उनके साथ हाथियोंके पादरक्षक भी थे ॥ ३६ ॥

पुत्राश्चान्धकवृष्णीनां सर्वे पार्थमनुव्रताः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महाधनाः ॥ ३७ ॥
दश षट् च सहस्राणि वासुदेवावरोधनम् ।
पुरस्कृत्य ययुर्वज्रं पौत्रं कृष्णस्य धीमतः ॥ ३८ ॥

अन्धक और वृष्णिवंशके समस्त बालक अर्जुनके प्रति श्रद्धा रखनेवाले थे । वे तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, महाधनी शूद्र और भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार स्त्रियाँ—ये सब-की-सब बुद्धिमान् श्रीकृष्णके पौत्र वज्रको आगे करके चल रहे थे ॥ ३७-३८ ॥

बहूनि च सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
भोजवृष्ण्यन्धकस्त्रीणां हतनाथानि निर्ययुः ॥ ३९ ॥
तत्सागरसमप्रख्यं वृष्णिचक्रं महर्धिमत् ।
उवाह रथिनां श्रेष्ठः पार्थः परपुरंजयः ॥ ४० ॥

भोज, वृष्णि और अन्धक कुलकी अनाथ स्त्रियोंकी संख्या कई हजारों, लाखों और अर्बुदोंतक पहुँच गयी थी । वे सब द्वारकापुरीसे बाहर निकलीं । वृष्णियोंका वह महान् समृद्धिशाली मण्डल महासागरके समान जान पड़ता था । शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन उसे अपने साथ लेकर चले ॥ ३९-४० ॥

निर्याते तु जने तस्मिन् सागरो मकरालयः ।
द्वारकां रत्नसम्पूर्णां जलेनाप्लावयत् तदा ॥ ४१ ॥

उस जनसमुदायके निकलते ही मगरों और घड़ियालोंके निवासस्थान समुद्रने रत्नोंसे भरी-पूरी द्वारका नगरीको जलसे डुबो दिया ॥ ४१ ॥

यद् यद्धि पुरुषव्याघ्रो भूमेस्तस्या व्यमुञ्चत ।
तत् तत् सम्प्लावयामास सलिलेन स सागरः ॥ ४२ ॥

पुरुषसिंह अर्जुनने उस नगरका जो-जो भाग छोड़ा, उसे समुद्रने अपने जलसे आप्लावित कर दिया ॥ ४२ ॥

तदद्भुतमभिप्रेक्ष्य द्वारकावासिनो जनाः ।
तूर्णात् तूर्णतरं जग्मुरहो दैवमिति ब्रुवन् ॥ ४३ ॥

यह अद्भुत दृश्य देखकर द्वारकावासी मनुष्य बड़ी तेजीसे चलने लगे । उस समय उनके मुखसे बारंबार यही निकलता था कि 'दैवकी लीला विचित्र है' ॥ ४३ ॥

काननेषु च रम्येषु पर्वतेषु नदीषु च ।
निवसन्नानयामास वृष्णिदारान् धनंजयः ॥ ४४ ॥

अर्जुन रमणीय काननों, पर्वतों और नदियोंके तटपर निवास करते हुए वृष्णिवंशकी स्त्रियोंको ले जा रहे थे ॥ ४४ ॥

स पञ्चनदमासाद्य धीमानतिसमृद्धिमत् ।
देशे गोपशुधान्याढ्ये निवासमकरोत् प्रभुः ॥ ४५ ॥

चलते-चलते बुद्धिमान् एवं सामर्थ्यशाली अर्जुनने अत्यन्त समृद्धिशाली पञ्चनद देशमें पहुँचकर जो गौ, पशु तथा धन-धान्यसे सम्पन्न था, ऐसे प्रदेशमें पड़ाव डाला ॥ ४५ ॥

ततो लोभः समभवद् दस्यूनां निहतेश्वराः ।
दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमानाः पार्थेनैकेन भारत ॥ ४६ ॥

भरतनन्दन ! एकमात्र अर्जुनके संरक्षणमें ले जायी जाती हुई इतनी अनाथ स्त्रियोंको देखकर वहाँ रहनेवाले लुटेरोंके मनमें लोभ पैदा हुआ ॥ ४६ ॥

ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहतचेतसः ।
आभीरा मन्त्रयामासुः समेत्याशुभदर्शनाः ॥ ४७ ॥

लोभसे उनके चित्तकी विवेकशक्ति नष्ट हो गयी। उन अशुभदर्शी पापाचारी आभीरोंने परस्पर मिलकर सलाह की ॥

अयमेकोऽर्जुनो धन्वी वृद्धबालं हतेश्वरम् ।
नयत्यस्मानतिक्रम्य योधाश्चेमे हतौजसः ॥ ४८ ॥

'भाइयो ! देखो, यह अकेला धनुर्धर अर्जुन और ये हतोत्साह सैनिक हमलोगोंको लाँघकर वृद्धों और बालकोंके इस अनाथ समुदायको लिये जा रहे हैं (अतः इनपर आक्रमण करना चाहिये)' ॥ ४८ ॥

ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवस्ते सहस्रशः ।
अभ्यधावन्त वृष्णीनां तं जनं लोप्त्रहारिणः ॥ ४९ ॥

ऐसा निश्चय करके लूटका माल उड़ानेवाले वे लट्ठधारी लुटेरे वृष्णिवंशियोंके उस समुदायपर हजारोंकी संख्यामें टूट पड़े ॥ ४९ ॥

महता सिंहनादेन त्रासयन्तः पृथग्जनम् ।
अभिपेतुर्वधार्थं ते कालपर्यायचोदिताः ॥ ५० ॥

समयके उलट-फेरसे प्रेरणा पाकर वे लुटेरे उन सबके वधके लिये उतारू हो अपने महान् सिंहनादसे साधारण लोगोंको डराते हुए उनकी ओर दौड़े ॥ ५० ॥

ततो निवृत्तः कौन्तेयः सहसा सपदानुगः ।
उवाच तान् महाबाहुरर्जुनः प्रहसन्निव ॥ ५१ ॥

आक्रमणकारियोंको पीछेकी ओरसे धावा करते देख कुन्तीकुमार महाबाहु अर्जुन सेवकोंसहित सहसा लौट पड़े और उनसे हँसते हुए-से बोले—॥ ५१ ॥

निवर्तध्वमधर्मज्ञा यदि जीवितुमिच्छथ ।
इदानीं शरनिर्भिन्नाः शोचध्वं निहता मया ॥ ५२ ॥

'धर्मको न जाननेवाले पापियो ! यदि जीवित रहना चाहते हो तो लौट जाओ; नहीं तो मेरे द्वारा मारे जाकर या मेरे बाणोंसे विदीर्ण होकर इस समय तुम बड़े शोकमें पड़ जाओगे' ॥ ५२ ॥

तथोक्तास्तेन वीरेण कदर्थीकृत्य तद्वचः ।
अभिपेतुर्जनं मूढा वार्यमाणाः पुनः पुनः ॥ ५३ ॥

वीरवर अर्जुनके ऐसा कहनेपर उनकी बातोंकी अवहेलना करके वे मूर्ख अहीर उनके बारंबार मना करनेपर भी उस जनसमुदायपर टूट पड़े ॥ ५३ ॥

ततोऽर्जुनो धनुर्दिव्यं गाण्डीवमजरं महत् ।
आरोपयितुमारेभे यत्नादिव कथंचन ॥ ५४ ॥

तब अर्जुनने अपने दिव्य एवं कभी जीर्ण न होनेवाले विशाल धनुष गाण्डीवको चढ़ाना आरम्भ किया और बड़े प्रयत्नसे किसी तरह उसे चढ़ा दिया ॥ ५४ ॥

चकार सज्जं कृच्छ्रेण सम्भ्रमे तुमुले सति ।
चिन्तयामास शस्त्राणि न च सस्मार तान्यपि ॥ ५५

भयङ्कर मारकाट छिड़नेपर बड़ी कठिनाईसे उन्हें धनुषपर प्रत्यञ्चा तो चढ़ा दी; परंतु जब वे अपने अस् शस्त्रोंका चिन्तन करने लगे, तब उन्हें उनकी याद बिल्कु नहीं आयी ॥ ५५ ॥

वैकृतं तन्महद् दृष्ट्वा भुजवीर्ये तथा युधि ।
दिव्यानां च महास्त्राणां विनाशाद् व्रीडितोऽभवत् ॥ ५

युद्धके अवसरपर अपने बाहुबलमें यह महान् विक आया देख और महान् दिव्यास्त्रोंका विस्मरण हुआ जान लज्जित हो गये ॥ ५६ ॥

वृष्णियोधाश्च ते सर्वे गजाश्वरथयोधिनः ।
न शेकुरावर्तयितुं ह्रियमाणं च तं जनम् ॥ ५७

हाथी, घोड़े और रथपर बैठकर युद्ध करनेवाले सम वृष्णिसैनिक भी उन डाकुओंके हाथमें पड़े हुए अप मनुष्योंको लौटा न सके ॥ ५७ ॥

कलत्रस्य बहुत्वाद्धि सम्पतत्सु ततस्ततः ।
प्रयत्नमकरोत् पार्थो जनस्य परिरक्षणे ॥ ५८

उस समुदायमें स्त्रियोंकी संख्या बहुत थी; इसलिये डा कई ओरसे उनपर धावा करने लगे तो भी अर्जुन उन रक्षाका यथासाध्य प्रयत्न करते रहे ॥ ५८ ॥

मिषतां सर्वयोधानां ततस्ताः प्रमदोत्तमाः ।
समन्ततोऽवकृष्यन्त कामाच्चान्याः प्रवव्रजुः ॥ ५९

सब योद्धाओंके देखते-देखते वे डाकू उन सुन्द स्त्रियोंको चारों ओरसे खींच-खींचकर ले जाने लगे। दूस स्त्रियाँ उनके स्पर्शके भयसे उनकी इच्छाके अनुसार चुपच उनके साथ चली गयीं ॥ ५९ ॥

ततो गाण्डीवनिर्मुक्तैः शरैः पार्थो धनंजयः ।
जघान दस्यून् सोद्वेगो वृष्णिभृत्यैः सहस्रशः ॥ ६०

तब कुन्तीकुमार अर्जुन उद्विग्न होकर सहस्रों वृष्णि सैनिकोंको साथ ले गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उ लुटेरोंके प्राण लेने लगे ॥ ६० ॥

क्षणेन तस्य ते राजन् क्षयं जग्मुरजिह्मगाः ।
अक्षया हि पुरा भूत्वा क्षीणाः क्षतजभोजनाः ॥ ६१

राजन् ! अर्जुनके सीधे जानेवाले बाण क्षणभरमें क्षी हो गये। जो रक्तभोगी बाण पहले अक्षय थे, वे ही उ समय सर्वथा क्षयको प्राप्त हो गये ॥ ६१ ॥

स शरक्षयमासाद्य दुःखशोकसमाहतः ।
धनुष्कोट्या तदा दस्यूनवधीत् पाकशासनिः ॥ ६२

बाणोंके समाप्त हो जानेपर दुःख और शोकके आघ सहते हुए इन्द्रकुमार अर्जुन धनुषकी नोकसे ही उन डाकुओं वध करने लगे ॥ ६२ ॥

प्रेक्षतस्त्वेव पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः ।
जग्मुरादाय ते म्लेच्छाः समन्ताज्जनमेजय ॥ ६३

जनमेजय ! अर्जुन देखते ही रह गये और वे म्लेच्छ डाकू सब ओरसे वृष्णि और अन्धकवंशकी सुन्दरी स्त्रियोंको लूट ले गये ॥ ६३ ॥

धनंजयस्तु दैवं तन्मनसाऽचिन्तयत् प्रभुः ।
दुःखशोकसमाविष्टो निःश्वासपरमोऽभवत् ॥ ६४ ॥

प्रभावशाली अर्जुनने मन-ही-मन इसे दैवका विधान समझा और दुःख-शोकमें डूबकर वे लंबी साँस लेने लगे ॥

अस्त्राणां च प्रणाशेन बाहुवीर्यस्य संक्षयात् ।
धनुषश्चाविधेयत्वाच्छराणां संक्षयेण च ॥ ६५ ॥
बभूव विमनाः पार्थो दैवमित्यनुचिन्तयन् ।

अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान लुप्त हो गया । भुजाओंका बल भी घट गया । धनुष भी काबूके बाहर हो गया और अक्षय बाणोंका भी क्षय हो गया । इन सब बातोंसे अर्जुनका मन उदास हो गया । वे इन सब घटनाओंको दैवका विधान मानने लगे ॥ ६५½ ॥

न्यवर्तत ततो राजन् नेदमस्तीति चाब्रवीत् ॥ ६६ ॥

राजन् ! तदनन्तर अर्जुन युद्धसे निवृत्त हो गये और बोले—'यह अस्त्रज्ञान आदि कुछ भी नित्य नहीं है' ॥६६॥

ततः शेषं समादाय कलत्रस्य महामतिः ।
हृतभूयिष्ठरत्नस्य कुरुक्षेत्रमवातरत् ॥ ६७ ॥

फिर अपहरणसे बची हुई स्त्रियों और जिनका अधिक भाग लूट लिया गया था, ऐसे बचे-खुचे रत्नोंको साथ लेकर परम बुद्धिमान् अर्जुन कुरुक्षेत्रमें उतरे ॥ ६७ ॥

एवं कलत्रमानीय वृष्णीनां हृतशेषितम् ।
न्यवेशयत कौरव्यस्तत्र तत्र धनंजयः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार अपहरणसे बची हुई वृष्णिवंशकी स्त्रियोंको ले आकर कुरुनन्दन अर्जुनने उनको जहाँ-तहाँ बसा दिया ॥

हार्दिक्यतनयं पार्थो नगरे मार्तिकावते ।
भोजराजकलत्रं च हृतशेषं नरोत्तमः ॥ ६९ ॥

कृतवर्माके पुत्रको और भोजराजके परिवारकी अपहरणसे बची हुई स्त्रियोंको नरश्रेष्ठ अर्जुनने मार्तिकावत नगरमें बसा दिया ॥ ६९ ॥

ततो वृद्धांश्च बालांश्च स्त्रियश्चादाय पाण्डवः ।
वीरैर्विहीनान् सर्वांस्ताञ्शक्रप्रस्थे न्यवेशयत्॥ ७० ॥

तत्पश्चात् वीरविहीन समस्त वृद्धों, बालकों तथा अन्य स्त्रियोंको साथ लेकर वे इन्द्रप्रस्थ आये और उन सबको वहाँका निवासी बना दिया ॥ ७० ॥

यौयुधानिं सरस्वत्यां पुत्रं सात्यकिनः प्रियम् ।
न्यवेशयत धर्मात्मा वृद्धबालपुरस्कृतम् ॥ ७१ ॥

धर्मात्मा अर्जुनने सात्यकिके प्रिय पुत्र यौयुधानिको सरस्वतीके तटवर्ती देशका अधिकारी एवं निवासी बना दिया और वृद्धों तथा बालकोंको उसके साथ कर दिया ॥ ७१ ॥

इन्द्रप्रस्थे ददौ राज्यं वज्राय परवीरहा ।
वज्रेणाक्रूरदारास्तु वार्यमाणाः प्रवव्रजुः ॥ ७२ ॥

इसके बाद शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अर्जुनने वज्रको इन्द्रप्रस्थका राज्य दे दिया । अक्रूरजीकी स्त्रियाँ वज्रके बहुत रोकनेपर भी वनमें तपस्या करनेके लिये चली गयीं ॥ ७२ ॥

रुक्मिणी त्वथ गान्धारी शैव्या हैमवतीत्यपि ।
देवी जाम्बवती चैव विविशुर्जातवेदसम् ॥ ७३ ॥

रुक्मिणी, गान्धारी, शैव्या, हैमवती तथा जाम्बवती देवीने पतिलोककी प्राप्तिके लिये अग्निमें प्रवेश किया ॥७३॥

सत्यभामा तथैवान्या देव्यः कृष्णस्य सम्मताः ।
वनं प्रविविशू राजंस्तापस्ये कृतनिश्चयाः ॥ ७४ ॥

राजन् ! श्रीकृष्णप्रिया सत्यभामा तथा अन्य देवियाँ तपस्याका निश्चय करके वनमें चली गयीं ॥ ७४ ॥

द्वारकावासिनो ये तु पुरुषाः पार्थमभ्ययुः ।
यथार्हं संविभज्यैनान् वज्रे पर्यददज्जयः ॥ ७५ ॥

जो-जो द्वारकावासी मनुष्य पार्थके साथ आये थे, उन सबका यथायोग्य विभाग करके अर्जुनने उन्हें वज्रको सौंप दिया ॥ ७५ ॥

स तत् कृत्वा प्राप्तकालं बाष्पेणापिहितोऽर्जुनः ।
कृष्णद्वैपायनं व्यासं ददर्शासीनमाश्रमे ॥ ७६ ॥

इस प्रकार समयोचित व्यवस्था करके अर्जुन नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए महर्षि व्यासके आश्रमपर गये और वहाँ बैठे हुए महर्षिका उन्होंने दर्शन किया ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि वृष्णिकलत्राद्यानयने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें अर्जुनद्वारा वृष्णिवंशकी स्त्रियों और बालकोंका आनयनविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

अर्जुन और व्यासजीकी बातचीत

वैशम्पायन उवाच

प्रविशन्नर्जुनो राजन्नाश्रमं सत्यवादिनः ।
ददर्शासीनमेकान्ते मुनिं सत्यवतीसुतम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! सत्यवादी व्यासजीके आश्रममें प्रवेश करके अर्जुनने देखा कि सत्यवतीनन्दन मुनिवर व्यास एकान्तमें बैठे हुए हैं ॥ १ ॥

स तमासाद्य धर्मज्ञमुपतस्थे महाव्रतम् ।
अर्जुनोऽस्मीति नामास्मै निवेद्याभ्यवदत् ततः ॥ २ ॥

महान् व्रतधारी तथा धर्मके ज्ञाता व्यासजीके पास पहुँचकर 'मैं अर्जुन हूँ' ऐसा कहते हुए धनंजयने उनके चरणोंमें प्रणाम किया । फिर वे उनके पास ही खड़े हो गये ॥

स्वागतं तेऽस्त्विति प्राह मुनिः सत्यवतीसुतः ।
आस्यतामिति होवाच प्रसन्नात्मा महामुनिः ॥ ३ ॥

उस समय प्रसन्नचित्त हुए महामुनि सत्यवतीनन्दन व्यासने अर्जुनसे कहा—'बेटा ! तुम्हारा स्वागत है; आओ यहाँ बैठो' ॥ ३ ॥

तमप्रतीतमनसं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।
निर्विण्णमनसं दृष्ट्वा पार्थं व्यासोऽब्रवीदिदम् ॥ ४ ॥

अर्जुनका मन अशान्त था । वे बारंबार लंबी साँस खींच रहे थे । उनका चित्त खिन्न एवं विरक्त हो चुका था । उन्हें इस अवस्थामें देखकर व्यासजीने पूछा—॥ ४ ॥

नखकेशदशाकुम्भवारिणा किं समुक्षितः ।
आवीरजानुगमनं ब्राह्मणो वा हतस्त्वया ॥ ५ ॥

'पार्थ ! क्या तुमने नख, बाल अथवा अधोवस्त्र (धोती) की कोर पड़ जानेसे अशुद्ध हुए घड़ेके जलसे स्नान कर लिया है ? अथवा तुमने रजस्वला स्त्रीसे समागम या किसी ब्राह्मणका वध तो नहीं किया है ? ॥ ५ ॥

युद्धे पराजितो वासि गतश्रीरिव लक्ष्यसे ।
न त्वां प्रभिन्नं जानामि किमिदं भरतर्षभ ॥ ६ ॥
श्रोतव्यं चेन्मया पार्थ क्षिप्रमाख्यातुमर्हसि ।

'कहीं तुम युद्धमें परास्त तो नहीं हो गये ? क्योंकि श्रीहीन-से दिखायी देते हो । भरतश्रेष्ठ ! तुम कभी पराजित हुए हो—यह मैं नहीं जानता; फिर तुम्हारी ऐसी दशा क्यों है ? पार्थ ! यदि मेरे सुननेयोग्य हो तो अपनी इस मलिनताका कारण मुझे शीघ्र बताओ' ॥ ६½ ॥



अर्जुन उवाच

यः स मेघवपुः श्रीमान् बृहत्पङ्कजलोचनः ॥ ७
स कृष्णः सह रामेण त्यक्त्वा देहं दिवं गतः ।

अर्जुनने कहा—भगवन् ! जिनका सुन्दर विग्रह मेघ समान श्याम था और जिनके नेत्र विशाल कमलदलके सम शोभा पाते थे, वे श्रीमान् भगवान् कृष्ण बलरामजीके स देहत्याग करके अपने परमधामको पधार गये ॥ ७½ ॥

(तद्वाक्यस्पर्शनालोकसुखं त्वमृतसंनिभम् ।
संस्मृत्य देवदेवस्य प्रमुह्याम्यमृतात्मनः ॥)

देवताओंके भी देवता, अमृतस्वरूप श्रीकृष्णके म वचनोंको सुनने, उनके श्रीअङ्गोंका स्पर्श करने और उ देखनेका जो अमृतके समान सुख था, उसे बार-बार य करके मैं अपनी सुध-बुध खो बैठता हूँ ॥

मौसले वृष्णिवीराणां विनाशो ब्रह्मशापजः ॥ ८
बभूव वीरान्तकरः प्रभासे लोमहर्षणः ।

ब्राह्मणोंके शापसे मौसलयुद्धमें वृष्णिवंशी वीरोंका विन हो गया । बड़े-बड़े वीरोंका अन्त कर देनेवाला वह रोमा कारी संग्राम प्रभासक्षेत्रमें घटित हुआ था ॥ ८½ ॥

एते शूरा महात्मानः सिंहदर्पा महाबलाः ॥ ९
भोजवृष्ण्यन्धका ब्रह्मन्नन्योन्यं तैर्हतं युधि ।

ब्रह्मन् ! भोज, वृष्णि और अन्धकवंशके ये महामन शूरवीर सिंहके समान दर्पशाली और महान् बलवान् थे; प वे गृहयुद्धमें एक-दूसरेके द्वारा मार डाले गये ॥ ९½ ॥

गदापरिघशक्तीनां सहाः परिघबाहवः ॥ १०
त एरकाभिर्निहताः पश्य कालस्य पर्ययम् ।

जो गदा, परिघ और शक्तियोंकी मार सह सकते थे, परिघके समान सुदृढ़ बाहोंवाले यदुवंशी एरका नामक तृ विशेषके द्वारा मारे गये—यह समयका उलट-फेर तो देखिये

हतं पञ्चशतं तेषां सहस्रं बाहुशालिनाम् ॥ ११
निधनं समनुप्राप्तं समासाद्येतरेतरम् ।

अपने बाहुबलसे शोभा पानेवाले पाँच लाख वीर आप ही लड़-भिड़कर मर मिटे ॥ ११½ ॥

पुनः पुनर्न मृष्यामि विनाशममितौजसाम् ॥ १२
चिन्तयानो यदूनां च कृष्णस्य च यशस्विनः ।
शोषणं सागरस्येव पर्वतस्येव चालनम् ॥ १३
नभसः पतनं चैव शैत्यमग्नेस्तथैव च ।
अश्रद्धेयमहं मन्ये विनाशं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १४

उन अमित तेजस्वी वीरोंके विनाशका दुःख मुझसे कि तरह सहा नहीं जाता । मैं बार-बार उस दुःखसे व्या हो जाता हूँ । यशस्वी श्रीकृष्ण और यदुवंशियोंके परलो गमनकी बात सोचकर तो मुझे ऐसा जान पड़ता है, म समुद्र सूख गया, पर्वत हिलने लगे, आकाश फट पड़ा

अग्निके स्वभावमें शीतलता आ गयी। शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले श्रीकृष्ण भी मृत्युके अधीन हुए होंगे—यह बात विश्वासके योग्य नहीं है। मैं इसे नहीं मानता ॥ १२—१४ ॥

न चेह स्थातुमिच्छामि लोके कृष्णविनाकृतः।
इतः कष्टतरं चान्यच्छृणु तद् वै तपोधन ॥ १५ ॥

फिर भी श्रीकृष्ण मुझे छोड़कर चले गये। मैं इस संसारमें उनके बिना नहीं रहना चाहता। तपोधन! इसके सिवा जो दूसरी घटना घटित हुई है, वह इससे भी अधिक कष्टदायक है। आप इसे सुनिये ॥ १५ ॥

मनो मे दीर्यते येन चिन्तयानस्य वै मुहुः।
पश्यतो वृष्णिदाराश्च मम ब्रह्मन् सहस्रशः ॥ १६ ॥
आभीरैरनुसृत्याजौ हृताः पञ्चनदालयैः।

जब मैं उस घटनाका चिन्तन करता हूँ, तब बारंबार मेरा हृदय विदीर्ण होने लगता है। ब्रह्मन्! पंजाबके अहीरोंने मुझसे युद्ध ठानकर मेरे देखते-देखते वृष्णिवंशकी हजारों स्त्रियोंका अपहरण कर लिया ॥ १६½ ॥

धनुरादाय तत्राहं नाशकं तस्य पूरणे ॥ १७ ॥
यथा पुरा च मे वीर्यं भुजयोर्न तथाभवत्।

मैंने धनुष लेकर उनका सामना करना चाहा, परंतु मैं उसे चढ़ा न सका। मेरी भुजाओंमें पहले-जैसा बल था वैसा अब नहीं रहा ॥ १७½ ॥

अस्त्राणि मे प्रणष्टानि विविधानि महामुने ॥ १८ ॥
शराश्च क्षयमापन्नाः क्षणेनैव समन्ततः।

महामुने! मेरा नाना प्रकारके अस्त्रोंका ज्ञान विलुप्त हो गया। मेरे सभी बाण सब ओर जाकर क्षणभरमें नष्ट हो गये॥

पुरुषश्चाप्रमेयात्मा शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १९ ॥
चतुर्भुजः पीतवासाः श्यामः पद्मदलेक्षणः।
यश्च याति पुरस्तान्मे रथस्य सुमहाद्युतिः ॥ २० ॥
प्रदहन् रिपुसैन्यानि न पश्याम्यहमच्युतम्।

जिनका स्वरूप अप्रमेय है, जो शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले, चतुर्भुज, पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर तथा कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले हैं, जो महातेजस्वी प्रभु शत्रुओंकी सेनाओंको भस्म करते हुए मेरे रथके आगे-आगे चलते थे, उन्हीं भगवान् अच्युतको अब मैं नहीं देख पाता हूँ॥

येन पूर्वं प्रदग्धानि शत्रुसैन्यानि तेजसा ॥ २१ ॥
शरैर्गाण्डीवनिर्मुक्तैरहं पश्चाच्च नाशयम्।
तमपश्यन् विषीदामि घूर्णामीव च सत्तम ॥ २२ ॥

साधुशिरोमणे! जो पहले स्वयं ही अपने तेजसे शत्रु-सेनाओंको दग्ध कर देते थे, उसके बाद मैं गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उन शत्रुओंका नाश करता था, उन्हीं भगवान्‌को आज न देखनेके कारण मैं विषादमें डूबा हुआ हूँ। मुझे चक्कर-सा आ रहा है ॥ २१-२२ ॥

परिनिर्विण्णचेताश्च शान्तिं नोपलभेऽपि च।
(देवकीनन्दनं देवं वासुदेवमजं प्रभुम्।)
विना जनार्दनं वीरं नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ २३ ॥

मेरे चित्तमें निर्वेद छा गया है। मुझे शान्ति नहीं मिलती है। मैं देवस्वरूप, अजन्मा, भगवान् देवकीनन्दन वासुदेव वीर जनार्दनके बिना अब जीवित रहना नहीं चाहता ॥२३॥

श्रुत्वैव हि गतं विष्णुं ममापि मुमुहुर्दिशः।
प्रणष्टज्ञातिवीर्यस्य शून्यस्य परिधावतः ॥ २४ ॥
उपदेष्टुं मम श्रेयो भवानर्हति सत्तम।

सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये, यह बात सुनते ही मुझे सम्पूर्ण दिशाओंका ज्ञान भूल जाता है। मेरे भी जाति-भाइयोंका नाश तो पहले ही हो गया था, अब मेरा पराक्रम भी नष्ट हो गया; अतः शून्यहृदय होकर इधर-उधर दौड़ लगा रहा हूँ। संतोंमें श्रेष्ठ महर्षे! आप कृपा करके मुझे यह उपदेश दें कि मेरा कल्याण कैसे होगा? ॥ २४½ ॥

व्यास उवाच

(देवांशा देवदेवेन सम्मतास्ते गताः सह।
धर्मव्यवस्थारक्षार्थं देवेन समुपेक्षिताः ॥)

व्यासजी बोले—कुन्तीकुमार! वे समस्त यदुवंशी देवताओंके अंश थे। वे देवाधिदेव श्रीकृष्णके साथ ही यहाँ आये थे और साथ ही चले गये। उनके रहनेसे धर्मकी मर्यादा-के भङ्ग होनेका डर था; अतः भगवान् श्रीकृष्णने धर्म-व्यवस्था-की रक्षाके लिये उन मरते हुए यादवोंकी उपेक्षा कर दी ॥

ब्रह्मशापविनिर्दग्धा वृष्ण्यन्धकमहारथाः ॥ २५ ॥
विनष्टाः कुरुशार्दूल न ताञ्शोचितुमर्हसि।
भवितव्यं तथा तच्च दिष्टमेतन्महात्मनाम् ॥ २६ ॥

कुरुश्रेष्ठ! वृष्णि और अन्धकवंशके महारथी ब्राह्मणोंके शापसे दग्ध होकर नष्ट हुए हैं; अतः तुम उनके लिये शोक न करो। उन महामनस्वी वीरोंकी भवितव्यता ही ऐसी थी। उनका प्रारब्ध ही वैसा बन गया था ॥ २५-२६ ॥

उपेक्षितं च कृष्णेन शक्तेनापि व्यपोहितुम्।
त्रैलोक्यमपि गोविन्दः कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम् ॥ २७ ॥
प्रसहेदन्यथाकर्तुं कुतः शापं महात्मनाम्।

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण उनके संकटको टाल सकते थे तथापि उन्होंने इसकी उपेक्षा कर दी। श्रीकृष्ण तो सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंकी गतिको पलट सकते हैं, फिर उन महामनस्वी वीरोंको प्राप्त हुए शापको पलट देना उनके लिये कौन बड़ी बात थी ॥ २७½ ॥

(स्त्रियश्च ताः पुरा शप्ताः प्रहासकुपितेन वै।
अष्टावक्रेण मुनिना तदर्थं त्वद्बलक्षयः ॥)

(तुम्हारे देखते-देखते स्त्रियोंका जो अपहरण हुआ है, उसमें भी देवताओंका एक रहस्य है।) वे स्त्रियाँ पूर्वजन्ममें अप्सराएँ थीं। उन्होंने अष्टावक्र मुनिके रूपका उपहास किया था। मुनिने शाप दिया था (कि 'तुमलोग मानवी हो जाओ और दस्युओंके हाथमें पड़नेपर तुम्हारा इस शापसे उद्धार

होगा ।') इसीलिये तुम्हारे बलका क्षय हुआ (जिससे वे डाकुओंके हाथमें पड़कर उस शापसे छुटकारा पा जायँ), (अब वे अपना पूर्वरूप और स्थान पा चुकी हैं, अतः उनके लिये भी शोक करनेकी आवश्यकता नहीं है)॥

रथस्य पुरतो याति यः स चक्रगदाधरः ॥ २८ ॥
तव स्नेहात् पुराणर्षिर्वासुदेवश्चतुर्भुजः ।

जो स्नेहवश तुम्हारे रथके आगे चलते थे (सारथिका काम करते थे), वे वासुदेव कोई साधारण पुरुष नहीं, साक्षात् चक्र-गदाधारी पुरातन ऋषि चतुर्भुज नारायण थे ॥ २८½ ॥

कृत्वा भारावतरणं पृथिव्याः पृथुलोचनः ॥ २९ ॥
मोक्षयित्वा तनुं प्राप्तः कृष्णः स्वस्थानमुत्तमम् ।

वे विशाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण इस पृथ्वीका भार उतारकर शरीर त्याग अपने उत्तम परमधामको जा पहुँचे हैं ॥ २९½॥

त्वयापीह महत् कर्म देवानां पुरुषर्षभ ॥ ३० ॥
कृतं भीमसहायेन यमाभ्यां च महाभुज ।

पुरुषप्रवर ! महाबाहो ! तुमने भी भीमसेन और नकुल-सहदेवकी सहायतासे देवताओंका महान् कार्य सिद्ध किया है ॥

कृतकृत्यांश्च वो मन्ये संसिद्धान् कुरुपुङ्गव ॥ ३१ ॥
गमनं प्राप्तकालं व इदं श्रेयस्करं विभो ।

कुरुश्रेष्ठ ! मैं समझता हूँ कि अब तुमलोगोंने अपना कर्तव्य पूर्ण कर लिया है । तुम्हें सब प्रकारसे सफलता प्राप्त हो चुकी है । प्रभो ! अब तुम्हारे परलोकगमनका समय आया है और यही तुमलोगोंके लिये श्रेयस्कर है ॥ ३१½ ॥

एवं बुद्धिश्च तेजश्च प्रतिपत्तिश्च भारत ॥ ३२ ॥
भवन्ति भवकालेषु विपद्यन्ते विपर्यये ।

भरतनन्दन ! जब उद्भवका समय आता है, तब इसी प्रकार मनुष्यकी बुद्धि, तेज और ज्ञानका विकास होता है और जब विपरीत समय उपस्थित होता है, तब इन सबका नाश हो जाता है ॥ ३२½ ॥

कालमूलमिदं सर्वं जगद्बीजं धनंजय ॥ ३३ ॥
काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया ।

धनंजय ! काल ही इन सबकी जड़ है । संसारकी उत्पत्तिका बीज भी काल ही है और काल ही फिर अकस्मात् सबका संहार कर देता है ॥ ३३½ ॥

स एव बलवान् भूत्वा पुनर्भवति दुर्बलः ॥ ३४ ॥
स एवेशश्च भूत्वेह परैराज्ञाप्यते पुनः ।

वही बलवान् होकर फिर दुर्बल हो जाता है और वही एक समय दूसरोंका शासक होकर कालान्तरमें स्वयं दूसरोंका आज्ञापालक हो जाता है ॥ ३४½ ॥

कृतकृत्यानि चास्त्राणि गतान्यद्य यथागतम् ॥ ३५ ॥
पुनरेष्यन्ति ते हस्ते यदा कालो भविष्यति ।

तुम्हारे अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोजन भी पूरा हो गया है इसलिये वे जैसे मिले थे, वैसे ही चले गये । जब उपयुक्त समय होगा, तब वे फिर तुम्हारे हाथमें आयेंगे ॥ ३५½ ॥

कालो गन्तुं गतिं मुख्यां भवतामपि भारत ॥ ३६ ॥
एतच्छ्रेयो हि वो मन्ये परमं भरतर्षभ ।

भारत ! अब तुमलोगोंके उत्तम गति प्राप्त करनेका समय उपस्थित है । भरतश्रेष्ठ ! मुझे इसीमें तुमलोगोंका परम कल्याण जान पड़ता है ॥ ३६½ ॥

वैशम्पायन उवाच

एतद् वचनमाज्ञाय व्यासस्यामिततेजसः ॥ ३७ ॥
अनुज्ञातो ययौ पार्थो नगरं नागसाह्वयम् ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! अमिततेजस्वी व्यासजीके इस वचनका तत्त्व समझकर अर्जुन उनकी आज्ञा ले हस्तिनापुरको चले गये ॥ ३७½ ॥

प्रविश्य च पुरीं वीरः समासाद्य युधिष्ठिरम् ।
आचष्ट तद् यथावृत्तं वृष्ण्यन्धककुलं प्रति ॥ ३८ ॥

नगरमें प्रवेश करके वीर अर्जुन युधिष्ठिरसे मिले और वृष्णि तथा अन्धकवंशका यथावत् समाचार उन्होंने कह सुनाया ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि व्यासार्जुनसंवादे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

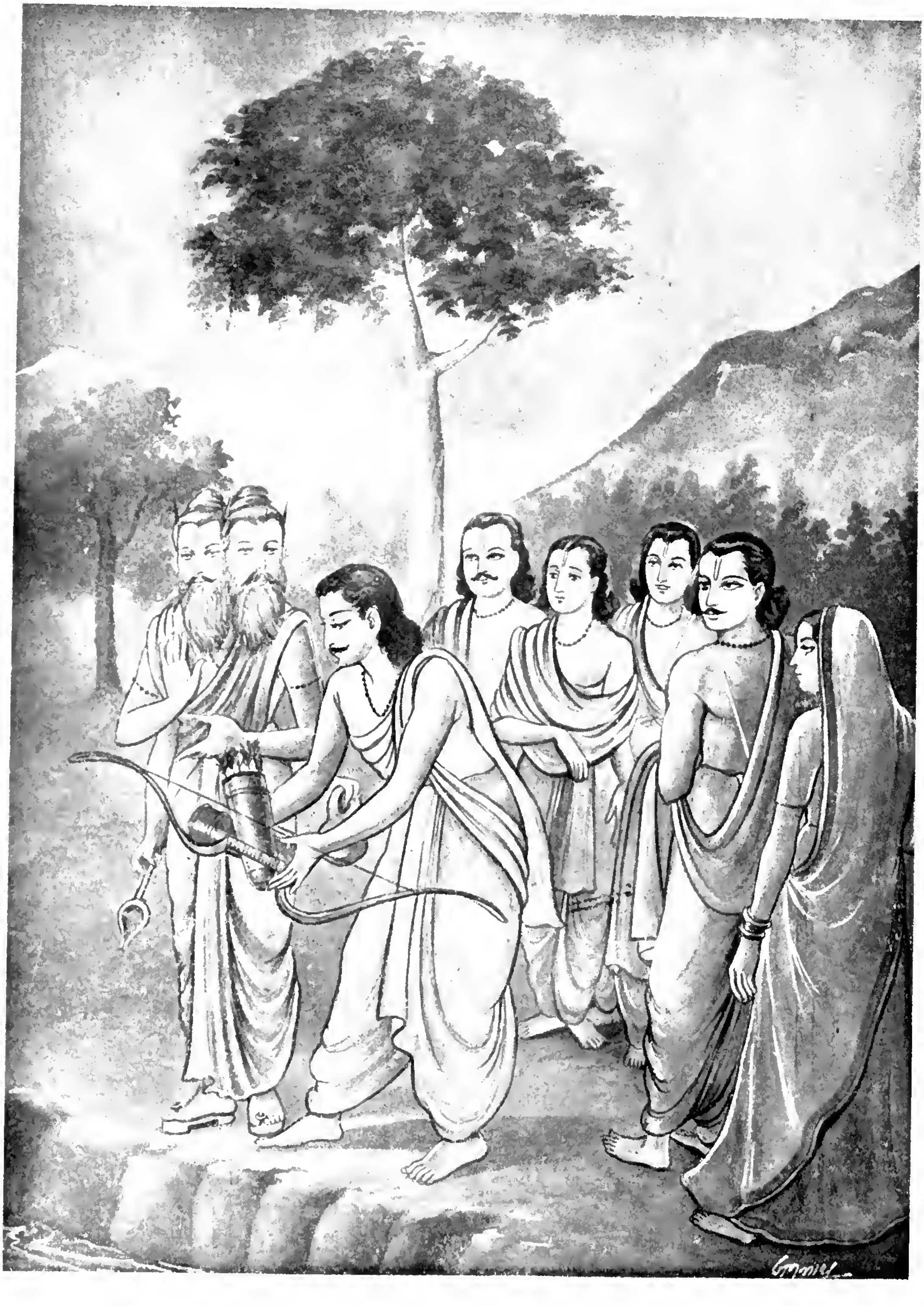
इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें व्यास और अर्जुनका संवादविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल ४१½ श्लोक हैं)

मौसलपर्व सम्पूर्ण

	अनुष्टुप्	(अन्य बड़े छन्द)	बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर	कुलयोग
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	२६०	(३०)	४१।	३०१।
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	३॥			३॥

मौसलपर्वकी कुल श्लोक-संख्या ३०४॥।



अग्निकी प्रेरणासे अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष और अक्षय तरकसको जलमें डाल रहे हैं।